chapter. 2

==========

: द्वितीय अध्याय :

पौराणिक उपन्यास की परिभाषा और विभावना

==========

: द्वितीय अध्याय :

पौराणिक उपन्यास की परिभाषा और विभावना

प्रास्ताविक :

हमारा आलोच्य विषय पौराणिक उपन्यासों से सम्बद्ध है। अतः पौराणिक उपन्यास की परिभाषा और विभावना को स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है क्योंकि कई विद्वान इतिहास और पुराण के व्यावर्तक अंतर को न समझ सकने के कारण कई स्थानों पर पुराण को इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। उनकी इस भ्रान्ति के कारण कई बार वे पौराणिक घटनाओं की गणना भी ऐतिहासिक घटनाओं के अंतर्गत करते हैं, परिणामतः ऐसे विद्वान कई पौराणिक उपन्यासों की परिगणना भी ऐतिहासिक उपन्यासों के रूप में करते हैं। डॉ. एस.एन.गणेशन तथा डॉ. रामदश मिश्र जैसे औपन्यासिक आलोचना के मूर्धन्य विद्वानों ने अपने-अपने औपन्यासिक आलोचनात्मक ग्रन्थों में कई पौराणिक उपन्यासों का उल्लेख ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में किया हैं।[1]

ऐसा इसलिए भी हुआ है कि इतिहास और पुराण उभय की प्रवृत्ति मूलतः अतीतोन्मुखी होती है। किन्तु पुराणों में निहित अतीत अति-प्राचीन होता है, जबकि इतिहास में निकटवर्ती अतीत भी हो सकता है। इतिहासकार रामचन्द्र गुहा द्वारा संपादित 'मेकर्स आफ मोडर्न इण्डिया' एक ऐसा ही उदाहरणीय इतिहासग्रन्थ है जिसमें आधुनिक काल के लगभग 19 स्त्री-पुरुषों का विस्तृत जीवन-कथन है, जिन्होंने भारत को आधुनिक बनाने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है।[2] अभिप्राय यह कि इतिहास निकट अतीत का भी हो सकता है, जबकि पुराण असंदिग्ध रूप से प्राचीन होता है, इतना प्राचीन कि उसका तिथ्यांकन भी अनिश्चित, अनिर्णित एवं विवादास्पद होता है।

वस्तुतः इतिहास और पुराण में इस प्रकार की भ्रान्ति का कारण उभय की विभावनाओं (Concepts) के अंतर को न समझ पाना है। किन्तु इधर एक नया अनतगौन भी चल रहा है। कुछ लोग इरादतन पुराण को इतिहास प्रमाणित करने पर तुले हुए हैं। फलतः वे हर पौराणिक घटना को ऐतिहासिक घटना के रूप में चित्रित कर रहे हैं और ये लोग ये सब बातें जान-बूझकर कर रहे हैं। यह तो एक ज्ञात सत्य है कि सोते को जगाना आसान है, पर जगते को जगाना मुश्किल हो जाता है।

बहरहाल प्रस्तुत अध्याय में हमने यह स्पष्ट करने की प्रामाणिक चेष्टा की है कि इतिहास और पुराण ये दो भिन्न विषय है और उनकी विभावनाएं (Concepts) भी तत्वतः अलग-अलग हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय में इन दोनों विभावनाओं के अंतर को व्याख्यायित करने का यत्न किया है। इतिहास और पुराण दोनों के तात्विक अभिलक्षणों को विश्लेषित करने का प्रयत्न भी यहां हुआ है। तदुपरांत पौराणिक उपन्यास की व्याख्या स्पष्ट करने के उद्देश्य से 'पुराण' को भी परिभाषित किया गया है। उसके पश्चात् इतिहास और पुराण के अंतर को स्पष्टतया चिह्नित करेंगे। पौराणिक उपन्यास की व्याख्या और ऐसे उपन्यासों की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला जायेगा। पौराणिक उपन्यासों में अनेक मिथक कथाएं होती हैं, परंतु उन मिथक कथाओं की व्याख्या नये तार्किक ढंग से की जाती है। इस प्रकार के मिथक हमारे यहां ही नहीं, प्रत्युत सभी प्राचीन संस्कृतियों में पाए गए हैं। डॉ. कमल नसीम द्वारा संपादित 'ग्रीस पुराण कथाकोश' इसका ज्वलंत उदाहरण है। डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति का 'भारतीय मिथक कथाकोश' भी उल्लेखनीय हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय में मिथकों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए देश या संस्कृति के निर्माण में पुराणों के योगदान को भी स्पष्टतया रेखांकित किया जायेगा। अध्याय के अंत में कुछेक पौराणिक उपन्यासों का उल्लेख भर किया गया है, क्योंकि उन-उन उपन्यासों की विस्तृत व्याख्या एवं विश्लेषण परवर्ती अध्यायों में प्रस्तुत करने का हमारा उपक्रम है।

अध्याय के अंत में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा समूचे अध्याय से कुछेक निष्कर्ष निकाले जायेंगे।

इतिहास :

'इतिहास' शब्द 'इति+ह्रास' से व्युत्पन्न हुआ है। 'इति' का अर्थ है प्रारंभ या शुरूआत और 'ह्रास' का अर्थ है अंत। इस प्रकार 'इतिहास' शब्द का मोटे तौर पर अर्थ होगा किसी भी वस्तु या व्यक्ति की शुरू से लेकर आखिर तक की कहानी। इस प्रकार इतिहास किसीका भी हो सकता है – व्यक्ति, समाज, देश, प्रदेश, संस्था, प्रवृत्ति आदि-आदि। व्यक्ति के इतिहास में चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, शंकराचार्य, विवेकानंद, महात्मा गांधी, आंबेडकर आदि कोई भी व्यक्ति हो सकता है; किन्तु व्यक्ति का जीवन यदि समाज या देश से संपृक्त होता है तो उस प्रमाण में उनके इतिहास में समाज या देश का इतिहास भी शामिल हो जाता है। समाज और देश का इतिहास भी होता है। अलग-अलग काल-खण्डों में समाज की क्या स्थिति थी, उनमें कैसे रीति-रिवाज थे, कैसी परंपराएं थीं, कैसे उनके विश्वास-अविश्वास थे इन सब बातों पर वहां विचार होता है। देश का इतिहास भी कई तरह का होता है – राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि-आदि। प्रदेश का भी अपना इतिहास हो सकता है जैसे पंजाब का इतिहास, बंगाल और बिहार का इतिहास, गुजरात का इतिहास आदि-आदि। देश और समाज को गति प्रदान करने के लिए विभिन्न संस्थाओं का जन्म होता है, अतः इन संस्थाओं का भी अपना इतिहास होता है। संसार में घात-प्रतिघात और हिंसा-प्रतिहिंसा, क्रिया-प्रक्रिया निरंतर चलते रहते है। इनके परिणाम-स्वरूप विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। इन प्रवृत्तियों का भी अपना इतिहास हो सकता है। जैसे गुलामी प्रथा के उन्मूलन का आंदोलन; फ्रान्स, अमरीका, रूस आदि की क्रान्तियां, स्वाधीनता संग्राम, भारतीय नवजागरण, नारी-शिक्षा की प्रवृत्ति, नारी-मुक्ति आंदोलन (विमेन इमेनशिपेशन) अछूतोद्धार आदि-आदि। संक्षेप में जड़-चेतन किसी भी वस्तु का इतिहास हो सकता है।

आजकल इतिहास (हिस्टरी), भूगोल (ज्योग्रफी), रसायणशास्त्र (केमिस्ट्री) आदि शब्दों का विशिष्ट प्रयोग भी होने लगा है। सामन्यतः बाह्य घटनाओं और चरित्रों को हम इतिहास की संज्ञा देते हैं। बाह्य रूपरंग को, ढांचे (स्ट्रक्चर) को हम भूगोल और अंतर्मन की प्रवृत्तियों को हम 'केमेस्ट्री' कहते है। आजकल बहुत से युवक 'हिस्टरी' को जाने बिना लड़कियों की 'ज्योग्रफी' पर मरते हैं या आजकल उन दोनों की केमेस्ट्री बहुत मिलती है। तो यहां उक्त शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में हुआ है। भाषिक-संरचना के विकास के साथ इस प्रकार के प्रयोग अस्तित्व में आते हैं।

इतिहास की परिभाषा :

ऊपर इतिहास-विषयक जो चर्चा की है, वह सामान्य दृष्टि से की गई है। किन्तु इस विषय के विद्वान इतिहास की जो परिभाषा देते हैं, उन पर भी दृष्टिपात कर लेना समुचित रहेगा:

(1) 'कनसाइज़ आक्सफर्ड डिक्शनरी' में 'हिस्टरी' व्याख्या इस प्रकार की गई है – "Continuous methodical record of public events; study of growth of nation; whole train of events connected with nation, person, thing etc; systematic account of natural phenomena etc."[3]

प्रस्तुत व्याख्या में इतिहास के जो प्रमुख अभिलक्षण सामने आते हैं उनको हम संक्षेप में इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं – (क) इतिहास एक सतत प्रक्रिया है, अर्थात् प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण इतिहास का निर्माण होता है। आज की घटनाएं कल का इतिहास हो सकती हैं। (ख) इतिहास एक सुव्यवस्थित पद्धति है, अर्थात अपनी इच्छा से उसमें कोई काम नहीं चल सकता। वहां एक नियमित पद्धति का अनुशरण करना ही पड़ेगा। उसमें मन-गढ़न्त तथ्यों और काल्पनिकता का कोई स्थान नहीं है। (ग) उसमें किसी राष्ट्र के विकास की गाथा होती है। (घ) उसमें घटनाओं की एक शृंखला होती है जो किसी राष्ट्र, व्यक्ति या वस्तु से सम्बन्धित होती है। (च) इस संसार में जो भी घटित होता है, अच्छा या बुरा, उसका एक व्यवस्थित लेखा-जोखा उसमें निहित रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो

उसमें निश्चितता (एक्युरसी) पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उसमें तिथ्यानुसार घटनाओं का सिलसिला होता है। बिना तिथियों के निश्चित ज्ञान के उसमें कोई मनचाहे ढंग से 'फेंकमफेंक' नहीं कर सकता।

(2) 'काम्पेक्ट ओक्सफर्ड रेफरन्स डिक्शनरी' में 'हिस्टरी' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "1. The study of past events, 2. The past considered as a whole, 3. The past events connected with someone or something. 4. A continuous record of past events or trends."[4]

इस परिभाषा में निम्नलिखित मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है – 1. इतिहास का सम्बन्ध अतीत की घटनाओं के अध्ययन से है, 2. वहां भूतकाल को उसकी समग्रता में लिया जाता है, 3. उसमें अतीतकी उनघटनाओं को लिया जाता है जिनका किसी व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष से सम्बन्ध होता है। 4. इतिहास एक सतत प्रक्रिया है जो अतीत की घटनाओं और प्रवाहों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। यहां पर बताया गया है कि 'हिस्टरी' शब्द मूल ग्रीक 'हिस्टारीआ' से व्युत्पन्न हुआ है और उस मूल शब्द में ये सारे अर्थ निहित हैं। प्रस्तुत डिक्शनरी में 'Historiography' शब्द के संदर्भ में भी बताया गया है। उसके मूलतः दो अर्थ दिए गए हैं – 1. The study of the writing of history and of written histories. 2. The writing of history अर्थात् 1. इतिहास लेखन का अध्ययन और लिखित इतिहासों का अध्ययन। 2. इतिहास लेखन। अर्थात् अनेक लिखित इतिहासों के अध्ययन द्वारा इतिहास-लेखन की कला को आत्मसात करने वाली विधा को 'Historiography' कहते है।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास एक गंभीर विधा है। उसमें गहरे अध्ययन, अनुसंधान और विश्लेषण की आवश्यकता रहती है जो अत्यन्त, परिश्रम-साध्य है। इतिहास और काव्य (साहित्य) के संदर्भ में किए गए निम्नलिखित विधान को अत्युक्ति ही समझना चाहिए – "In History nothing is true excepts names and dates, while in fiction everything is true excepts the names and dates."[5] अर्थात् कथा-साहित्य में नामों और तिथियों के

अतिरिक्त सब सत्य होता है और इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं होता। ऐसा तो कोई इतिहास-विरोधी व्यक्ति ही कह सकता है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार एच. जी. वेल्स ने अपने ग्रन्थ 'द आउट्लाइन आफ हिस्टरी' में इतिहास के संदर्भ में कहा है – "Human history is in essence a history of ideas"[6] अर्थात् मानव इतिहास तत्वतः विचारों का इतिहास है। क्योंकि अंततः वे विचार ही हैं जो किसी व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित करते हैं।

सुप्रसिद्ध विचारक कार्लायल ने अपने ग्रन्थ 'फ्रेन्च रीवोल्युशन' में इतिहास के संदर्भ में लिखा है – "History, a distillation of rumour"[7] अर्थात् इतिहास अफवाओं का विशुद्धिकरण है। इससे उनका यह अभिप्राय है कि लोगों में जो भ्रान्तियां फैली हुई होती हैं, इतिहासकार उनकी छानबीन करता है और इस प्रकार उनके भीतर से सत्य को प्रकट करने का प्रयत्न करता है।

सुविख्यात चिंतक एवं इतिहासकार मार्गारेट हुसे इतिहास के संदर्भ में लिखते है – "One reason, that history repeats itself is that so many people were not listening it for first time."[8] अर्थात् इतिहास के संदर्भ में यह जो उक्ति है कि इतिहास अपना पुनरावर्तन अपने आप करता है, तो उसका एक मात्र कारण यह है कि बहुधा लोग प्रथमतः किसी बात को ध्यान से सुनते ही नहीं है। परोक्ष ढंग से उसे यह कहना चाहते हैं कि लोग ठीक ढंग से इतिहास को सुनते या पढ़ते नहीं है और इसलिए अतीत में जो गलतियां हो गई हैं उनसे कुछ सीखने के बदले, वे उन गलतियों को बार-बार दोहराते है, अतः उसके परिणाम भी बारबार सामने आते हैं, याने जो पहले हुआ है वह फिर होता है। प्रकारान्तर से यह फलित होता है कि महान प्रजा वह होती है जो अपने इतिहास को नहीं भूलती, जो अपने इतिहास से सबक लेती है और इसलिए वह अपने इतिहास का संरक्षण और सम्मान करती है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार गिबन अपने ग्रन्थ "डिक्लाइन एण्ड काल ओफ रोमन एम्पायर" में लिखते हैं – "History is indeed little

more than the register of the crimes, follies and misfortunes of mankind"[9] अर्थात् इतिहास केवल मानव-जाति के अपराधों, भ्रान्तियों और दुर्भाग्यों का लेखा-जोखा मात्र नहीं है, पर उससे कुछ विशेष है। इससे फलित होता है कि गिबन के मतानुसार इतिहास में केवल लड़ाइयों, अत्याचार और जुल्म मात्र की कहानी दर्ज नहीं होती, उसमें कुछ रचनात्मक भी होता है, और दूसरे केवल राजनीतिक इतिहास ही इतिहास नहीं है, बल्कि प्रत्येक काल-विशेष की सभ्यता और संस्कृति का भी वह इतिहास होता है।

डॉ. रामधारीसिंह दिनकर कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' में लेखक ने भारत के प्राचीन इतिहास से लेकर आधुनिक काल तक की चर्चा की है। प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है जो स्वयं भी एक अच्छे इतिहासविद हैं। उस भूमिका में उन्होंने इतिहास के संदर्भ में भी कुछ बताया है – "इतिहास के अंदर हम दो सिद्धान्त को काम करते हुए देखते हैं एक तो सातत्य का सिद्धांत है और दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धांत परस्पर विरोधी से लगते हैं परंतु ये विरोधी है नहीं। सातत्य के भीतर भी परिवर्तन का अंश है। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर सातत्य का कुछ अंश रखता है।"[10]

यहां पर पंडितजी ने स्पष्ट कर दिया है कि इतिहास में घटनाओं का एक ब्यौरेवार सिलसिला होता है और उसके साथ ही साथ प्रत्येक काल या युग में कुछ-न-कुछ परिवर्तन भी होते रहते हैं। पिछली कुछेक शताब्दियों को हम देखें तो कई परिवर्तन हुए हैं, जैसे उत्क्रान्ति (रेनेसां), फ्रान्स की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति, अमरिका की क्रान्ति, नवजागरण, स्वाधीनता-संग्राम आदि-आदि। इस प्रकार इतिहास घटनाओं के सातत्य और परिवर्तन की प्रक्रिया का दूसरा नाम है।

'भारत का प्राचीन इतिहास' के लेखक डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने इस इतिहास की भूमिका में लिखा है – "अब वह समय बीत चूका, जबकि भारत का इतिहास भगवान बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय से शुरू होता था, और बुद्ध के पहले के काल को

'अंधकारमय युग' माना जाता था। सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों के मिल जाने के कारण अब भारत का प्राचीन इतिहास प्राचीन इजिप्त और सुमेरिया के इतिहासों जितना ही पुराना हो गया है। प्रस्तरयुग के भी बहुत-से अवशेष अब भारत में उपलब्ध हो चुके हैं, और भारत के इतिहास को अब हम उस काल से शुरू कर सकते हैं।"[11]

राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित 'हंस' पत्रिका में प्रायः साहित्येतर विधाओं की चर्चा भी होती रहती है। सन् 2005 के 'हंस' के अक्तूबर अंक में इतिहास विषय पर काफी जमकर चर्चा हुई है। उसमें हिन्दी के श्री प्रियंवद ने बड़े महत्वपूर्ण विचार इतिहास-विषयक चर्चा के अंतर्गत व्यक्त किये हैं, यथा – "इतिहास तथ्यों का प्रकटीकरण है। किसी भी काल में समाज, राजनीति, धर्म, मनुष्यों के अन्तर्सम्बन्ध, इकहरे या सीधी रेखा में नहीं चलते ये हमेशा संश्लिष्ट, जटिल और बहुस्तरीय होते हैं। उनके आपसी द्वन्द्व, अन्तर्विरोध, समीकरण, आघात-प्रतिघात सब इतिहास में दिखाई देते हैं। इसलिए इतिहास की विविध व्याख्याएं होती हैं। वह उसकी अप्रामाणिकता या भ्रम नहीं है, बल्कि विषय की विविधता व बहुलतावाद है। उसकी व्यापकता है। यदि फाहियान लिखता है कि उसके समय में भारत में छः सौ धर्म थे, तो समझा जा सकता है कि समाज व धर्म कितना जटिल होगा। रामविलास शर्मा भाषाई विकास व परिवारों के आधार पर आर्यों की स्थिति पर विचार करते है तो वह अलग दृष्टि होती है। 1857 की क्रान्ति पर गालिब की डायरी 'दस्तम्बू' और सुंदरलाल का 'भारत में अंग्रजी राज्य' या अंग्रजी इतिहासकार और रामविलास शर्मा (वह 1857 की क्रान्ति को चीन, रूस या फ्रान्स की जनक्रान्ति के समकक्ष रखते हैं) अलग-अलग ध्रुवों पर खड़े हैं। यहां साम्यवादी, राष्ट्रवादी, औपनिवेषिक या साम्राज्यवादी तीन दृष्टियों से भारत का इतिहास व्याख्यायित है। यह इतिहास की अप्रमाणिकता या अविश्वसनीयता नहीं है। उसका व्यापक परिदृश्य है। इतनी विविधता होते हुए भी सबका आधार कहीं-न-कहीं 'ऐतिहासिक सत्यों का चुनाव' है। यह बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है। कोई ऐतिहासिक व्याख्या

'काल्पनिक या भावनात्मक तथ्यों 'पर है तो वह अस्वीकार्य है। किसी भी समाज को ब्राह्मण, चांडाल, स्त्री, श्रमिक, सामंत, पूंजीपति की दृष्टि से विवेचित किया जा सकता है। वे सब समाज की अलग-अलग तस्वीरें देंगे। दृष्टि लेखक की होगी, तथ्य इतिहास के। ... इतिहास मनुष्य की स्मृति है। स्मृति रोचक हो, उत्तेजक हो, यह जरूरी नहीं है। पर उसका एक्युरेट होना जरूरी है। साहित्य मनुष्य का संश्लिष्ट अन्तर्जगत या कि स्वप्न है। स्मृति और स्वप्न एक ही डोर के दो सिरे हैं। एक अतीत है, दूसरा भविष्य। एक से होकर हम दूसरे में प्रवेश पा सकते हैं। यही इतिहास और साहित्य का अन्तर्सम्बन्ध है। दोनों विषयों का एक-दूसरे के लिए सरोकार और उत्तरदायित्व है। एक-दूसरे के लिए नैतिक व अनुशासनिक बाध्यता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक उपन्यास की इस मूल प्रतिज्ञा को नहीं भूलना चाहिए।"[12]

"साहित्य" शब्द का जो व्यापक रूप में प्रयोग होता है, उसमें तो जो भी शब्दमय है, वाणीमय है, वह साहित्य कहलाता है। व्यापक अर्थ में प्रयुक्त इस 'साहित्य' को डिक्वेन्सी ने दो वर्गों में विभक्त किया है – (1) लिटरेचर आफ नोलेज और (2) लिटरेचर आफ पावर, जिसे भारतीय काव्य-मीमांसा में क्रमशः शास्त्र और काव्य या साहित्य कहा गया है। इस दृष्टि से विचार करें तो 'इतिहास' का समावेश 'लिटरेचर आफ नोलेज में होगा, अर्थात् शास्त्र में होगा। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इतिहास-विषयक कतिपय अवधारणाओं को हम इस प्रकार रख सकते है –

(1) इतिहास तथ्यमूलक है। वह 'मेटर आफ फेक्ट्स' पर आधारित है। अतः उसमें यथातथ्यता का विशेष आग्रह पाया जाता है।

(2) इतिहास तिथिमूलक है। उसमें समय अर्थात् वर्ष, मास दिवस इत्यादि का अत्यधिक महत्व है। इतिहासकार को तिथ्यानुक्रम का ध्यान रखना ही पड़ता है। छत्रपति शिवाजी का जन्म सन् 1627 ई. में हुआ या सन् 1630 ई. में हुआ उसका महत्व अन्य विषय के लोगों के लिए नहीं है, किन्तु इतिहासकार को तो 'एक्युरेट' होना ही

है। अतः यह बात उसके लिए महत्वपूर्ण होगी। उसकी खोज या अनुसंधान उसका काम्य होगा।

(3) इतिहास शास्त्र है, अतः उसके कुछ नीति-नियम और सिद्धान्त होते हैं और उनका पालन करना इतिहासकार का अनिवार्य धर्म है। 'निरंकुशा कवयाः' तो हो सकता है, परन्तु 'निरंकुशा इतिहासकाराः' नहीं हो सकता।

(4) शास्त्र होने के कारण इतिहासकार तथ्यों का आग्रही रहता है। उसके लिए जो घटित हुआ है, वही महत्वपूर्ण है। यह घटित अनचाहा या अवांछित भी हो सकता है। परन्तु उसे तो वही लिखना होगा। जबकि साहित्य संभावनाओं का क्षेत्र है। वहां किसी भी वस्तु की संभावना किसी भी रूप में हो सकती है।

(5) 'इतिहास' विज्ञान के अधिक निकट है। जिस प्रकार विज्ञान में 'एक्युरसी' को महत्व दिया जाता है, उसी प्रकार इतिहास में भी चोक्क्साई पर विशेष ध्यान केन्द्रित रहता है।

(6) इतिहास विज्ञान के निकट होने के कारण उसमें तार्किकता को विशेष महत्व दिया जाता है। वहां तथ्यों को तर्क की कसौटी पर कसा जाता है। वहां कोई भी अतार्किक बात नहीं चलती। प्रत्येक वस्तु के तर्क और प्रमाण जुटाने पड़ते हैं।

पुराण की परिभाषा:

हमारा विषय पौराणिक उपन्यासों से सम्बद्ध है। 'पौराणिक' शब्द 'पुराण' में 'इक' प्रत्यय जोड़कर बनाया गया है। अतः मूलतः वह 'पुराण' शब्द से व्यत्पन्न हुआ है। ऊपर हमने इतिहास-विषयक चर्चा की है, अतः यहां 'पुराण' पर विचार करना आवश्यक है, ताकि तुलनात्मक दृष्टि से उभय के व्यावर्तक लक्षणों को विश्लेषित कर सकें।

डॉ. वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-हिन्दी कोश में 'पुराण' शब्द के निम्नलिखित तीन अर्थ दिए हैं – (1) पुराना, प्राचीन, पूर्वकाल – सम्बद्ध ; उदाहरण – 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, नचापि काव्यं नवमित्यवदयम्' (मालविकाग्निमित्र (कालिदास): 1/2/2 ;

(2) वयोवृद्ध, पुरातन और (3) अठारह पुराण : कुछ विख्यात धार्मिक पुस्तकें जो गिनती में अठारह है तथा व्यास द्वारा प्रणीत मानी जाती है। ये पुस्तकें ही हिन्दू-पुराण तथा कथा-साहित्य के भण्डार हैं। पुराणों में पॉच प्रकार के विषयों का वर्णन है, अतएव पुराण को 'पंचलक्षण' भी कहते है।[13]

श्री नवलजी द्वारा प्रणीत 'नालन्दा विशाल शब्दसागर' में 'पुराण' शब्द के पाँच अर्थ दिए हैं – (1) प्राचीनकालीन कोई घटना, (2) अतीतकाल की कथा, प्राचीन आख्यान-पुरानी कथा, (3) हिन्दुओं के अठारह धार्मिक आख्यान या धर्मग्रन्थ जिनकी रचना वेदव्यास ने की थी। इनमें सृष्टि की उत्पति, लय तथा प्राचीन ऋषियों तथा राजवंशों आदि के वृतान्त तथा देवी-देवताओं, तीर्थों आदि के माहात्म्य हैं – विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्ध, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरूड़, ब्रह्मांड और भविष्य। (4) अठारह की संख्या, (5) शिव।[14]

महामहोपाध्याय के. का. शास्त्री द्वारा सम्पादित 'बृहद गुजराती कोश – खण्ड द्वितीय' में 'पुराण' शब्द के संदर्भ में कहा गया है – (1) पुरातन, प्राचीन, पूर्वनुं, अगाउनुं (2) दंतकथाओ द्वारा मानुष, अध्र्मानुष, दिव्य प्रकारनी प्रचलित थयेली आख्यायिताओ नो ते-ते संग्रह-ग्रन्थ (संस्कृत भाषामां भिन्न-भिन्न समये लखायेलां आवां अढार पुराण मळे छे)[15] अर्थात् (1) पुरातन, प्राचीन, पूर्व का पहले का (2) दंतकथाओं द्वारा मनुष्य, अर्ध-मनुष्य विषयक प्रचलित दिव्य प्रकार की कथाओं का संग्रह। संस्कृत भाषा में भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गये ऐसे अठारह पुराण मिलते हैं।

डॉ. हरदेव बाहरी द्वारा विरचित 'बृहद शिक्षार्थी हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश' में 'पुराण' शब्द के संदर्भ में उसके निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं : (1) Ancient, old times, (2) Mythology, (3) Mythological scriptures. [16] इसके संदर्भ में उन्होंने पुराणकथा, पुराणपंथी, पुराणविद, तथा पुराणविद्या जैसे शब्द भी दिए हैं जिनके अंग्रजी पर्याय क्रमशः Myth conservative (orthodox), mythologist तथा mythology इत्यादि भी दिए गए हैं।[17]

'द इनसाइज़ आक्सफर्ड डिक्शनरी आफ करेण्ट इंग्लिश' में 'पुराण' के अंग्रेजी पर्याय "Mythology" के निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं – "Body of myths, relating to particular person or subjects of ancient time, study of myths"[18] इसीमें 'पुराण' से संलग्नित के लिए 'mythological' शब्द दिया गया है।[19] इसी शब्दकोश में 'myth' के संदर्भ में कहा गया है -- "Purely fictitious narrative involving super-natural persons etc and embodying popular ideas on natural phenomena etc; fictitious person or thing"[20]

'कोम्पेक्ट आक्सफर्ड रेफेरन्स डिक्शनरी' में 'मायथोलोजी' के संदर्भ में कहा गया है – "(1) A collection of myths, (2) A set of widely held but exaggerated of false stories or beliefs."[21] इसी कोश में 'myth' के संदर्भ में यह टिप्पणी पायी जाती है -- "(1) It traditional story concerning the early history of a people or explaing a natural or social fact, (2) A widely held but false belief, (3) An imaginary person or thing."[22]

डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'भारतीय साहित्य कोश' में पुराण के संदर्भ में निम्नलिखित टिप्पणी उपलब्ध होती है – "ईसा की दूसरी शती से लेकर आठवीं शती के बीच रचित हिन्दुओं की धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक अवस्थाओं – मान्यताओं से परिपूर्ण संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग। रचयिता के रूप में वेदव्यास के नाम से सम्बद्ध पुराणों की संख्या अठारह हैं : ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्ध, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरूड़ और ब्रह्मांड। इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत' नामक पुराण का भी उन्नीसवें पुराण के रूप में उल्लेख किया जाता है। पुराणों के अतिरिक्त व्यास के ही नाम से सम्बद्ध अठारह उपपुराण भी हैं : सनतकुमार, नरसिंह, नंद, शिव, धर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, उषनस् (वैद्य), मानव वरुण, काली, महेश्वर, साम्ब, सौर, मारीज, भार्गव। पुराणों का प्रसिद्ध लक्षण है : 'सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च वंशानुचरितम् चैव पुराणं पंचलक्षणम्'। अमरकोश के अनुसार पुराणों में आन्विक्षिकी, दण्डनीति, तर्कविद्या, अर्थशास्त्र और आख्यायिका – ये पॉच प्रमुख अंग

हैं। इस प्रकार पुराण लोक और विचार के बृहदकोश हैं जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास से सम्बद्ध प्रायः प्रत्येक उल्लेखनीय घटना, ज्योतिष, व्याकरण, अलंकारशास्त्र, चिकित्सा आदि भारतीय ज्ञान के सभी महत्वपूर्ण अंगों का समावेश है। भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला पुरातत्व आदि से सम्बद्ध कोई भी अध्ययन पुराणों के बिना पूरा नहीं हो सकता।"[23]

इसी कोश में 'पुराण' के संदर्भ में यह विवरण भी उपलब्ध होता है – " 'पुराण' (रचनाकाल – 600 ई. पूर्व) किसी एक काल की रचना नहीं है। पुराणों के रचयिता व्यास हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। पुराणों की संख्या अठारह हैं।... पुराण भारतीय धर्म एवं समाज के इतिहास-ग्रन्थ हैं। पुराणों के अंतर्गत सृष्टि के आरंभ से लेकर मानव के विकास तक का इतिक्रम भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य किस प्रकार के कर्मों से किस प्रकार का जन्म ग्रहण करता है, यह व्यवस्था भी पुराणों में वर्तमान है। अंतःकरण की शुद्धि के लिए व्रत एवं उपवासों का वर्णन भी पुराणों में प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पुराणों का वंशावलि-वर्णन भी महत्वपूर्ण है। पुराणों की अतिशयोक्तियों एवं उनकी प्रवृत्तिपरक शैलियों के कारण कतिपय विद्वान पुराणों को गल्प मात्र मानते हैं, परन्तु यह कल्पना असमीचीन है। पुराण प्रवृत्तिमार्गी है। धर्म-कर्म में प्रवृत्त करने के लिए पुराणों का अतिशय महत्व है। पुराणों की साहित्यिकता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। साहित्यिकता के कारण ही उनमें रोचकता भी आ गयी है। इसी प्रकार पुराणों की वर्णन-शैली वैज्ञानिकों जैसी तथ्यकथन की न होकर साहित्यिक एवं प्रांजल है। समग्र रूप से भारतीय इतिहास, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का महत्व बेजोड़ हैं। सामाजिक एवं भौगोलिक दृष्टि से भी पुराणों की महत्ता श्लाघ्य है।"[24]

डॉ. शम्भूनाथसिंह ने 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' नामक ग्रन्थ में अपभ्रंश में पुराणों के संदर्भ में जो कहा गया है उसका उल्लेख किया है – "अपभ्रंश साहित्य में 'पुराण' का अभिप्राय

हिन्दुओं के ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु पुराण आदि पुराणों से नहीं है, जिनका वर्ण्य-विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित होता है। वहां 'पुराण' पौराणिक शैली में लिखे प्रबंध-काव्य का द्योतक है। जैनों ने 'रामायण', 'महाभारत' और हिन्दू 'पुराणों' के अनुसार उनके अनुकरण पर अपने अलग-अलग पुराण बनाये थे और इन जैन पुराणों से प्रभावित होकर, जैन कवियों ने पौराणिक प्रबंध काव्यों की रचना की थी। पुराणों की शैली से तात्पर्य यह है कि उसमें पौराणिक-धार्मिक आख्यान होते हैं। कथानक में अन्विति-क्रम होता है। अवान्तर-कथाओं की अधिकता और घटनाओं की विविधता होती है। अलौकिक और अप्राकृत तत्वों का अधिक उपयोग होता है। कथा के भीतर कथा कहने की और संवाद-रूप में कथा कहने की प्रवृत्ति होती है। भवान्तरों का वर्णन होता है, साथ ही उपदेश देना या किसी मत-विशेष का प्रचार करना उनका उद्देश्य होता है।"[25]

उपर्युक्त पुराण शैली में लिखे हुए काव्य हमें दो रूपों में प्राप्त होते हैं – एक तो ऐसे प्रबंध काव्य हैं जिनमें 63 शलाका पुरुषों या अनेक धार्मिक महापुरुषों का एक साथ जीवन-चरित काव्यमय शैली में वर्णित होता है, जैसे पुष्पदंत का 'महापुराण' स्वयंभू का 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमिचरिउ' या 'हरि-वंशपुराण' और दूसरे ऐसे काव्य हैं जिनमें एक ही धार्मिक पुरुष का चरित वर्णित रहता है, जैसे 'जम्बूस्वामी चरिउ', 'पासुपुराण', 'णेमिणाहचरिउ' इत्यादि। ऐसे काव्यों की विशेषता यह होती है कि उनमें किसी पौराणिक या धार्मिक व्यक्ति का जीवनचरित जैन परंपरानुकूल वर्णित मिलता है। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से उसके कथानक में जैन परंपरा के अनुसार कुछ परिवर्तन कर देता है। इस पुराण शैली में लिखे गये काव्य पौराणिक विषयों पर लिखे धार्मिक काव्य हैं, पुराण नहीं। इनमें शृंगार और युद्ध के वर्णन भी मिलते हैं। इनमें अवसर के अनुरूप प्रकृति-वर्णन, प्राकृतिक वस्तुओं – संध्या, प्रभात, चन्द्रोदय, नदी आदि – का सुंदर चित्रण मिलता है। उनमें स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य, जल-क्रीड़ा, रण-प्रयाण, युद्ध आदि के भी विशद् वर्णन होते हैं। [26]

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि 'पुराण' को अंग्रेजी में 'मायथोलोजी' कहा गया है, जिनकी कहानियों में अनेक 'मिथक' (मिथ) उपलब्ध होते हैं। डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय मिथककोश' में मिथक-तत्व की महत्ता के संदर्भ में लिखा है – "भाषा की उत्पत्ति के साथ ही उसकी सीमित शक्ति के कारण मिथक का जन्म हुआ होगा और वह साहित्य-सृजन का अभिन्न अंग बन गया। जब मानव अपने चारों ओर फैले जड़-चेतन जगत को देखता है तब वह सर्वव्यापी होकर सबकुछ नहीं देख पाता। तब वह परोक्ष की कल्पना करता है। मिथक के माध्यम से अनदेखे, अनचिह्ने जगत में प्रवेश करता है। मिथक के प्रयोग का यह क्रम आदिम मनुष्य से लेकर आज तक बुद्धि-विकास की प्रक्रिया के साथ चला आ रहा है और अनंतकाल तक चलता रहेगा। मिथक की शक्ति-सामर्थ्य का पता इस बात से चल जाता है कि वह निरक्षर व्यक्ति के पास जितनी आस्था-निष्ठा से रहता है, उतनी ही आस्था-निष्ठा से यह बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति के साथ उसकी रचनाधर्मिता और सृजनशीलता को प्रभावित करता है। मिथक के बहुआयामी व्यापक स्वरूप को दृष्टि में, रखते हुए हम नाना प्रकार की कथाओं में, कथाओं के पात्रों में, कथा के देशकाल में तथा चमत्कारिक अलौकिक रूप-विधान में इसका वर्चस्व देख सकते हैं। भारतीय साहित्य में मिथक या पुरा-कथा का इतना व्यापक विस्तार है कि उसे हम संख्यातीत भी कह सकते हैं। एक कथा या एक पात्र के साथ ऐसे अनेकानेक संदर्भ संष्लिष्ट हैं कि उनकी गणना करना और उनका उद्भव और विकास निरूपित कर पाना संभव नहीं है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य तक मिथक का प्रपंच पैला हुआ है। उसका संधान और विवेचन असंभव नहीं तो दुरुह अवश्य है। इस संधान से साहित्य से साहित्य के अध्येयता को गहनांधकार में प्रकाश की किरण मिल सकती है।"[27] इसमें डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने मिथकों की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए कहा है – 'साहित्य-सृजन में उनकी उपयोगिता असंदिग्ध है। यदि आधुनिक युग की बदलती हुई मानसिकता के परिपेक्ष्य में हम मिथक-सृष्टि पर विचार करें तो

पायेंगे कि उनका उपयोग आधुनिकबोध के साथ करना कुछ कठिन नहीं है। मिथक भले ही पुरातन हो किन्तु रचनाकार उसका उपयोग अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन संदर्भ में कर सकता है। पुराण के लिए हिन्दी काव्यों में मिथकीय प्रयोगों की भरमार देखी जा सकती है। कुंवरनारायण के 'आत्मजयी', धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया', दिनकर के 'उर्वशी' आदि काव्यों में मिथकों के नवीनतम प्रयोग देखे जा सकते हैं। अतः मिथकों की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता।"[28]

पौराणिक मिथक कथाओं में कल्पनातीत अवास्तविक, अयथार्थ, अप्राकृतिक एवं अवैज्ञानिक तथ्य होते हैं, उसे 'कैटभ' के संदर्भ में जो पौराणिक विवरण मिलता है, उसमें देखा जा सकता है – "मधु और कैटभ नामक दो असुरों की उत्पत्ति विष्णु के कानों के मैल से हुई थी। ब्रह्मा ने पहले मिट्टी से उन दोनों के आकार-प्रकार का निर्माण किया था, फिर ब्रह्मा की प्रेरणा से वायु ने उसकी आकृति में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने उन पर हाथ फेरा तो एक कोमल था, अतः उसका नाम मधु रखा तथा दूसरा कठोर था, अतः उसका नाम कैटभ रखा। वे दोनों जल-प्रलय के समय पानी में विचरते रहते थे। एक बार वे द्युलोक में पहुंचे। विष्णु तथा उनकी नाभि से निकले कमल में ब्रह्मा सो रहे थे। उन दोनों असुरों ने अपने बल से उन्मत्त हो वहां विचरना प्रारंभ किया। विष्णु ने उन दोनों के बलिष्ठ रूप को देखकर उन्हें वर देने की इच्छा की – पर अभिमानी मधु-कैटभ स्वयं विष्णु को वर देना चाहते थे। विष्णु ने उनसे वर मांगा कि वे दोनों विष्णु के हाथों मारे जाय। तदुपरांत उन्होंने विष्णु से वर मांगा कि उन दोनों का वध खुले आकाश में हो तथा वे दोनों विष्णु के पुत्र हों। विष्णु ने वर दे दिया तदुपरांत पद्मनाभ से उन दोनों का युद्ध हुआ। उन्होंने नारायण से प्रार्थना की कि उनकी मृत्यु जल में न हो। नारायण ने उन दोनों को अपनी जंघा पर मसल कर मार डाला। दोनों लाशें जल में मिलकर एक हो हईं। उन दोनों दैत्यों के मेद स अच्छादित होकर वहां का जल अदृश्य हो गया, जिससे नाना प्रकार

के जीवों का जन्म हुआ। वसुधा उन दोनों के मेद से आपूरित होने के कारण मेदिनी कहलायी।"[29]

उपर्युक्त विवरण में हो तथ्य दिए गए हैं उनका विश्लेषण करने पर अनेक प्रश्न उद्भवित होते हैं, जैसे – (1) पहले पृथ्वी ही नहीं थी तो ब्रह्मा ने कौन-सी मिट्टीसे उनका निर्माण किया? (2) जल-प्रलय की घटना पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद की है, दूसरे जब पृथ्वी ही नहीं थी, तब जल-प्रलय कहां हुआ? (3) मधु-कैटभ जब बलिष्ठ ही थे तो विष्णु को उन्हें वर देने की इच्छा क्यों हुई? (4) नारायण ने मधु-कैटभ की लाशों को जल में डाल दिया, बिना पृथ्वी के यह जल कहां से आया? (5) कानों के मैल से किसी की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? (6) जब उत्पत्ति हो ही गई थी तो फिर ब्रह्मा को अतिरिक्त मिट्टी लगाने की क्या आवश्यकता पड़ गई? ऐसे अनेकानेक प्रश्न किसी भी वैज्ञानिक सोच रखने वाले बुद्धिजीवी के मस्तिष्क में उत्पन्न हो सकते हैं।

कहने का अभिप्राय यह कि पुराणों में ऐसी अजीबो-गरीब घटनाओं का घटाटोप मिलता है। दूसरे इन विविध पुराणों में जो कथाएं उपलब्ध होती हैं उनमें किसी प्रकार की कोई अन्वति मिलती नहीं है।

भारत, प्राचीन इजिप्त, चीन, अफ्रिका आदि अनेक देशों में ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संदर्भ में तरह-तरह की कथाएं उपलब्ध होती हैं। हमारे यहां ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संदर्भ में जो कथा मिलती है वह अत्यन्त रसप्रद है। उसके अनुसार पृथ्वी और ब्रह्मांड चार हाथी की पीठ पर स्थित हैं। वे हाथी एक महाकाय कछुआ की पीठ पर स्थित है और वह कछुआ शेषनाग के मस्तिष्क पर खड़ा है। चीन में ईसा पूर्व 600 में एक मान्यता प्रचलित थी। उस मान्यता के अनुसार इस महाकाय ब्रह्मांड का सर्जनहार 'फानहू' एक अण्डे से बाहर निकलता है। उसके पश्चात् वह इस जगत की रचना करता है। अपने औजारों की सहायता से पहले वह पर्वत और खाइयों की रचना करता है। उसके पश्चात् वह आकाश और सूर्य, चन्द्र और ताराओं को व्यवस्थित ढंग से रखता है। उसके बाद उसकी मृत्यु हुई तब उसकी खोपड़ी से

आकाश का गुंबज बना, मांस में से मिट्टी बनी, हड्डियों में से खड़क और रक्त से नदियों और समुद्रों का निर्माण हुआ। उसकी अंतिम सांस से वायु और बादलों का निर्माण हुआ। उसके प्रस्वेद से वर्षा का जन्म हुआ। उसके बाद वह जमीन पर गिरा जिससे वानस्पतिक सृष्टि का निर्माण हुआ। उसके सिर में जो जूं थी उससे मानव-जाति की उत्पत्ति हुई।[30]

आइसलैण्ड के पौराणिक महाकाव्य 'प्रोझइड्डा' में ब्रह्मांड के सर्जन के सम्बन्ध में 'योनिंग गेप' की कल्पना की गई है। जम्हाई लेते समय दो जबड़ों के बीच में जो गेप होता है, उसे 'योनिंग गेप' कहते हैं। प्राचीन समय में मुसपेस और निकल्हेइम नामक दो मुल्कों को अलग करने वाली जो 'स्पेस' थी उसीको ही 'योनिंग गेप' कहा गया है। एक दिन मुसपेस की भयंकर आग बरसाती गरमी के कारण निफल्हेइम में स्थित बरफ पिघला और उसका भेज योनिंग गेप में गिरा, जिसके कारण 'आइमिर' नामक एक गंजावर प्राणी का जन्म हुआ। इस प्रकार प्रथम जीवन 'आइमिर' के रूप में प्रकट हुआ। तो दूसरी तरफ अफ्रिका के टोगो प्रदेश के काची जाति के लोग वुलबारी नामक कदावर प्राणी की कल्पना करते हैं। उस वुलबारी को वे अपना देवता मानते हैं। उसका रंग नीला है, जिसे हम नीले आकाश के रूप में जानते हैं। वे लोग उस 'बूलबारी' को ही मानव-जाति का सर्जक मानते हैं। पश्चिम आफ्रिका की ही योरुबु नामक जाति 'ओलारन' को आकाश का मालिक मानती है। अभिप्राय यह कि समग्र विश्व में अलग-अलग सभ्यताएं सृष्टि के सृजन के संदर्भ में अलग-अलग प्रकार की काल्पनिक कथाओं को प्रस्तुत करती हैं। कहीं वह 'फानहू' है, तो कहीं आइमिर, तो कहीं 'वुलबारी', तो कहीं 'आलोरेन'।[31]

किन्तु इन सभी कथाओं में जो सामान्य तत्व है, वह है उनकी अवास्तविक-सी फैण्टसी। इनको हम तर्क की कसौटी पर नहीं कस सकते। मिथक-कथाओं का निर्माण फैण्टसी से ही होता है।

किन्तु ईसा पूर्व की छठी शताब्दी के बाद काल्पनिक पुराण कथाओं के स्थान पर कुछ वैज्ञानिक प्रकार की विचारधाराओं का जन्म हुआ जिनमें पौराणिक देवताओं के स्थान पर कुछ अलग प्रकार

के तर्क-वितर्क प्रस्तुत हुए। मिलेटस के एना किसमाण्डर ने यह तर्क रखा कि सूर्य पृथ्वी के आसपास परिभ्रमण करता है। चन्द्र और सितारे इत्यादि आकाश के गुंबज के छिद्र मात्र हैं। गुंबज के उस तरफ भयंकर अगन-ज्वालाएं हैं। उन अगन-ज्वालाओं का प्रकाश ही हमें उपर्युक्त छिद्रों के माध्यम से दिखता है। [32] मेरे गुरु प्रोफेसर पारूकान्त का चन्द्र-विषयक फैण्टसी-युक्त दोहा इस प्रकार है :

"चॉद-चॉद कुछ भी नहीं, तम्बू तरे निवास।

छेद पर्यो वा तम्बू में, वाको भयो उजास ॥"[33]

ऊपर छिद्र-विषयक जो कल्पना है, वह कल्पना होते हुए भी, इतना तो कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक चिंतन की शुरुआत हो गई। इस वैज्ञानिक चिंतन के फलस्वरूप आज हम सौर-मण्डल की कल्पना कर सके हैं। सूर्य के आसपास नव ग्रह विचरण करते हैं। पृथ्वी भी उनमें से एक है। चन्द्र पृथ्वी से ही उत्पन्न उसका एक उपग्रह है।

यहां पुराण के संदर्भ में जो भिन्न-भिन्न परिभाषाएं एवं अर्थ दिए गए हैं तथा जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, उसको केन्द्र में रखते हुए 'पुराण' के संदर्भ में हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं –

(1) प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में इस प्रकार की पौराणिक कथाएं (मायथोलोजिकल स्टोरीज़) उपलब्ध होती हैं।

(2) पुराण-कथाओं में प्रायः कथानक-अन्वीति का अभाव मिलता है।

(3) विशुद्ध तर्क की कसौटी पर ये पुराकथाएं अवास्तविक और कई बार हास्यास्पद-सी प्रतीत होती हैं।

(4) इन सभी पुराकथाओं को लेकर हम आश्चर्यचकित तो हो सकते हैं, किन्तु प्रश्नों की बौछार के सामने उनका टिकना असंभव-सा प्रतीत होता है।

(5) इन सभी पुरा-कथाओं में प्रायः देशकाल की विभावना एक सिरे से नदारद-सी मिलती है। देश (प्लेस) का तो कहीं चित्र मिल भी जायेगा, परन्तु काल (टाईम) की विभावना तो प्रायः मिलती ही नहीं है।

(6) इन घटनाओं को काल-क्रमानुसार (क्रोनोलाजिकल आर्डर) रखना प्रायः असंभव-सा है।

(7) उनका कालक्रम अनिश्चित होने के कारण तिथिक्रम तो बिलकुल मिलता ही नहीं है।

(8) अठारह पुराणों के रचयिता व्यास माने जाते हैं। महाभारत के अतिरिक्त इन अठारह पुराणों की रचना एक व्यक्ति के संदर्भ में प्रायः असंभव-सी प्रतीत होती है और अनेक प्राच्य विद्वानों के मतानुसार व्यास कोई एक व्यक्ति न होकर व्यास नामधारी अनेक व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने इन पुराणों की रचना की है।

(9) यदि सभी पुराणों को व्यास-रचित मान भी लें तो इन – भिन्न-भिन्न पुराणों में व्यक्त कथाओं और विचारों में अन्वति नहीं है; क्योंकि यदि शिवपुराण में शिव का माहात्म्य वर्णित हैं तो विष्णुपुराण में विष्णु का।

(10) पुराणों में वर्णित अनेक पौराणिक पात्र हमें भिन्न-भिन्न युगों में भी प्राप्त होते हैं। उदाहरणतया जो परशुराम हमें रामायण में मिलते हैं, वे ही परशुराम हमें महाभारत में भी मिलते हैं; जबकि रामायण में त्रेतायुग की कथा और महाभारत में द्वापर की कथा है और पुराणों के अनुसार ही उनका एक युग हजारों-हजारों सालों का होता था। तो फिर उनका आयुष्य कितना माना जाय? यही बात व्यास, वाल्मीकि, वशिष्ट, विश्वामित्र आदि के संदर्भ में भी कही जा सकती है।

(11) रामायण में वर्णित कथावस्तु का 'स्पान' कुछेक सालों का है और फिर कहा गया है कि बाद में राम ने साठ हजार सालों तक राज्य किया, तो जब कुछेक सालों में इतनी सारी घटनाएं हो गईं, तो

बाद के साठ हजार वर्षों में क्या हुआ होगा? किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रश्न करना यहां व्यर्थ और बेमानी है।

(12) संक्षेप में पुराण कथाओं में वर्णित कथाएं कपोलकल्पित, अवास्तविक और असंभव-सी प्रतीत होती हैं। उनमें यथार्थ (रियालिटी) के स्थान पर काल्पनिकता (फैण्टसी) की भरमार दिखती हैं।

मिथकों की उपयोगिता:

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, पुराणों में मिथक कथाओं की भरमार होती है और ये मिथक कथाएं नितान्त काल्पनिक, अवास्तविक और असंभव-सी प्रतीत होती हैं; तथापि प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति में उनकी उपस्थिति दर्ज है। अतः उनकी उपयोगिता पर प्रश्नार्थ लगाना अनुचित होगा। इन पुरा-कथाओं या मिथक कथाओं को प्रकटतः देखने पर या सुनने पर उनमें अवास्तविकता या असंभावितता दिखाई पड़ती है, किन्तु उनके अप्रकट, गूढ़ संकेतार्थों को समझने पर बहुत-सी गुत्थियां सुलझ जाती हैं। यही कारण है कि जहां निरीक्षर भट्टाचार्य से लोगों में उनके प्रति अतीव आस्था दिखाई पड़ती है, वहां बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले, तर्क-वितर्क करने वाले विद्वानों और चिंतकों को भी ये मिथक कथाएं आकर्षित करती हैं।

साहित्य और कलाओं में केवल प्रकट अर्थ से काम नहीं चलता, वहां अप्रकट गूढ़ार्थों की आवश्यकता भी रहती है। महान कविता का एक गुण है – उसमें निहित ऐम्बीग्यूइटी, क्योंकि उससे ही उसमें अनेक-स्तरीयता (मेनी फोल्डनेस) का निर्माण होता है। काव्य या साहित्य या कला केवल एक अर्थ देकर चूक जाय तो उसे काव्य, कला या साहित्य कह ही नहीं सकते। उस प्रकट अर्थ के बाद भी उसके गर्भ में बहुत कुछ अव्यक्त रहना चाहिए, जिससे अलग-अलग देशकालों में – परिस्थितियों में – उसके अलग-अलग अर्थ निष्पन्न हों। इसीको ई.एम. फारर्स्टर काव्य की 'एवर-विर्जिनिटी' (सदैव कौमार्यता) कहते हैं। हमारे यहां काव्य, कला और ज्ञान की

देवी सरस्वती की कल्पना कुमारिका के रूप में की गई है। शायद इसका कारण भी यही है। हमारे पुराणों में सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी दोनों कहा गया है। प्रथम दृष्टया यह बात विचित्र और सामाजिक मान्यताओं तथा नैतिकता के विपरीत प्रतीत होती है, किन्तु यदि उसके गूढार्थों को देखा जाय तो ऐसा नहीं लगेगा। हमारे यहां काव्य और कला को सरस्वती ही कहा गया है। काव्यकृत या कलाकृति का सर्जक या रचयिता उसका पिता है, क्योंकि उसने उस रचना को जन्म दिया है। परंतु समग्र रचना-प्रक्रिया के दौरान तथा उसके बाद भी कुछ समय तक वह अपनी रचना पर मुग्ध हो जाता है। इस मौग्ध्य-रस में घुले बिना काव्यकृति या कलाकृति का सृजन असंभव है। इस दृष्टि से रचना का प्रथम भोक्ता तो उसका रचयिता ही ठहरता है और हमारे यहां कवि या कलाकार को प्रजापति या ब्रह्मा भी कहा गया है – 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः'।[34]

यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो हमारी उस कथा के गुहितार्थ स्पष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार तिलस्मी उपन्यासों में या कथाओं में कोई 'तिलस्म' छिपा हुआ रहता है और कथान्त में उसका स्फोट हो जाता है। ठीक उसी प्रकार मिथक-कथाओं में मिथक के गूढार्थ के प्रकट होने पर उसमें निहित तथ्य अतर्कशील या अवास्तविक नहीं लगता। परन्तु हमारे पुराणकारों ने मिथक के रहस्य का स्फोट नहीं किया है। वह रहस्य बरकरार रहता है। यह कार्य उन्होंने अपने भोक्ताओं पर छोड़ दिया है। जो केवल उसे आस्था और आस्था से ही ग्रहण करेगा, बुद्धिजीवियों की शब्दावली में कहें तो अंध-विश्वास से ग्रहण करेगा उनके लिए उनका वह प्रकट और प्रथम अर्थ ही महत्वपूर्ण रहेगा। परन्तु जो लोग बुद्धिजीवी हैं, विद्वान हैं, तर्कशास्त्री हैं, वे उन मिथक कथाओं के भिन्न-भिन्न सूचितार्थ देशकालानुसार निकालेंगे।

तभी तो काव्य-कृति या कलाकृति के भिन्न-भिन्न अर्थ निष्पन्न होते हैं। प्रत्येक युग के चिन्तक ने गीता का भाष्य अपने दृष्टिकोण से किया है। यदि एक अर्थ, या प्रकट अर्थ ही रहता तो गीता के इतने भाष्य नहीं हो सकते थे। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल

के रीतिसिद्ध कवि बिहारी की 'बिहारी सतसई' की अनेक टीकांएं लिखी गई हैं और उन टीकाकारों ने बिहारी सतसई के एक-एक दोहे की व्याख्या कई-कई तरह से की है।

इस प्रकार मिथक की उपयोगिता काव्य-साहित्य या कला के क्षेत्र में असंदिग्ध है ही और हमारे अनेक आधुनिक कवियों और लेखकों ने पौराणिक आख्यानों के मिथकों का प्रयोग करते हुए काव्य-रचनाएं की हैं जिनका उल्लैख हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं। गुजरात के सौन्दर्यवादी रूपवादी कवि सितांशु यशश्चन्द्र ने अपने 'जटायु' काव्य में जटायु के मिथक का भरपूर प्रयोग किया है। पौराणिक उपन्यासकार डॉ. नरेन्द्र कोहली ने भी अपने रामायण और महाभारत पर आधारित पौराणिक उपन्यासों में रामायण और महाभारत के अनेक मिथकों का स्पष्टीकरण या आधुनिकीकरण किया है। आधुनिक काल में कविता का परीक्षण केवल काव्यशास्त्रीय आधारों पर न करके सौन्दर्यशास्त्रीय (ऐस्थेटिक्स) आधारों पर किये जाने का आग्रह इधर बढ़ रहा है। और कहना न होगा कि सौन्दर्यशास्त्र की विभावना का सीधा सम्बन्ध कल्पना से है।[35] फलतः कविता का सीधा सम्बन्ध भी इन पुरा-कथाओं से है जिनका व्यापार कल्पना के अभाव में तो चल ही नहीं सकता। दूसरे शब्दों में पौराणिक साहित्य और उसमें प्रयुक्त मिथक यहां कई-कई तरीकों से उपकारक हो सकता है।

पुरा-कथाओं की उपयोगिता न केवल काव्य-जगत में है, किन्तु इतिहास, भूशास्त्र (जीओलोजी), भूगोल (ज्योग्रफी), पुरातत्व(आर्कियोलोजी) आदि शास्त्रों में भी पौराणिक ज्ञान एवं पुरा-कथाओं की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। मिथक-कथाओं से उनके अति-चमत्कारिक (फैण्टसी) तत्वों का छेद उड़ाकर उनमें से वास्तविक तथ्यों को छाना जा सकता है। उनमें व्यक्त 'लार्जर धेन इमेजिनेशन' (कल्पनातीत) व्यक्तित्वों से 'लार्जर धेन लाईफ' (महानायक) में परिवर्तित किया जा सकता है।

उदाहरणतया रामायण और महाभारत के राम और कृष्ण के अतिभौतिक, अतिपार्थिव लोकोत्तर रूप के स्थान पर उनके महानायक

स्वरूप को ग्रहण किया जा सकता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने हनुमान की समुद्र-संतरण की मिथक-कथा को उसके वास्तविक रूप में रखा है। उसमें उन्होंने निर्दिष्ट किया है कि भारत और श्रीलंका के बीच जो समुद्र है उसमें एक स्थान ऐसा है जहां भारत और श्रीलंका के बीच का अंतर सबसे कम है। इतना ही नहीं वहां समुद्र में बहुत सारे खड़क होने के कारण अनेक स्थानों पर समुद्र अधिक गहरा न होकर उथला है, इतना उथला कि कोई व्यक्ति चलकर भी उसे पार कर सकता है। ऐसे खड़क वहां पर अनेक हैं, जिसे उन्होंने 'स्तिया' शब्द दिया है और इस 'स्तिया' के कारण ही हनुमान समुद्र-संतरण में सफल होते हैं।[36]

इस प्रकार हनुमानजी के अपौरूषेय कार्य को पौरूषेय सिद्ध किया गया है। इस प्रकार की अनेक मिथक कथाओं का डॉ. नरेन्द्र कोहली ने आधुनिक अर्थघटन किया है। इस तरह ये पौराणिक कथाएं प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्व की नवीन खोजों में सहायक हो सकती हैं। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने 'स्तिया-विषयक' जो विभावना रखी है, उसका आधार इधर के कुछ भूविदशास्त्रियों (जीओलोजिस्ट) की खोजें ही हैं। सरल शब्दों में कहें तो पौराणिक कथाओं के चमत्कारपूर्ण अजीबोगरीब तत्वों को संभावितता (प्रोबेबिलीटी) की सीमा में लाया जा सकता है।

देवताओं के चित्रों में उनके मुखमंडल के आसपास जो तेजोवर्तुल (एरेना) होता है, उसके आधार पर रूस के एक वैज्ञानिक ने सोच-विचार किया, और फिर कुछ अनुसंधान करके उसने 'करेलियन फोटोग्राफी' का विकास किया जो इस समय तबीबी, कृषि आदि कई क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो रही है। अभिप्राय यह कि इन पुरा-कथाओं तथा उनके प्रतीकों से वैज्ञानिकों को भी प्रेरणा मिल सकती है। कहना न होगा कि वैज्ञानिकों के भी पहले टूल्स (साधन) तो कल्पना और विचार ही होते हैं।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

इतिहास और पुराण का अंतर:

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इतिहास और पुराण के कतिपय व्यावर्तक लक्षणों को हम निम्नलिखित रूप में क्रमांकित कर सकते हैं –

(1) इतिहास और पुराण दोनों की गणना शास्त्रों (लिटरेचर आफ नोलेज) के अंतर्गत की जा सकती है किन्तु उभय में दृष्टि-भेद के कारण इतिहास जहां विज्ञान के अधिक निकट है, वहां पुराण कल्पना, अतएव साहित्य के निकट है।

(2) इतिहास और पुराण दोनों का सम्बन्ध अतीत से है, किन्तु जहाँ इतिहास में प्राचीनकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल जैसा विभाजन उपलब्ध है, वैसा 'पुराण' में संभव नहीं है। पुराणों में निहित अतीत केवल प्राचीन ही होता हैं, बल्कि उसे अति-प्राचीन भी कह सकते हैं।

(3) जैसा कि ऊपर कहा गया है दोनों की गणना शास्त्रों में होती है, तथापि यदि कहना ही चाहें तो हम पुराणों को धर्मशास्त्र कह सकते हैं। इसी तरह 'इतिहास' की गणना समाजशास्त्र के अंतर्गत हो सकती है। बल्कि सामान्य भाषा में शास्त्र का सम्बन्ध सीधे धर्म से ही जोड़ा जा सकता है। जब कोई ऐसा कहता है कि 'शास्त्रों में ऐसा कहा गया है' तो उसका तात्पर्य धार्मिक शास्त्रों अर्थात् पुराणों से ही होता है।

(4) पुराणों में देशकाल की विभावना स्पष्ट नहीं है, दूसरी और इतिहास देशकाल की सीमाओं में ही आबद्ध रहता है।

(5) पुराणों में काल की गणना अतिशयोक्तिपूर्ण होती है। विज्ञान, इतिहास, पुरातत्व, भूगोल, भूशास्त्र आदि की काल-विषयक विभावना से उसका मेल बैठता नहीं है। हम प्रत्येक से एक-एक काल-विषयक विभावना को प्रस्तुत करते हैं जिससे उनकी काल-विषयक विभिन्न धारणाओं का अंतर स्पष्ट हो जायेगा।

(क) डॉ. रमेश मेनन ने महाभारत पर जो ग्रन्थ लिखा है उसके 'Forwarding' में लिखा गया है – "Three hundred and sixty five years make one year of Devas and Krita, the Gods and the ancestors. Four are the ages in the land of Bharat : The krita, the Treta, Dwapara and the kali. The krita yuga lasts for forty Eight Hundreds. Divine years, the Treta for 3600, the Dwapara for 2400 and the kali for 1200; and than another krita begins. A Chaturyuga, the cycle of four ages is 12000 divine years or 365 X 12000 human years long 71 Chaturyuga make a Manvantra; 14 Manvantra, a Kalp. A Kalp of thousand Chaturyuga, 12 million divine years is one day of Brahma; the Creater, 8000 Brahma Year make one Brahma yuga. 1000 Brahma yuga make a savannas long. One day of Maha Vishnu is the life-time of Brahma."[37]

(ख) दूसरी ओर डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने ग्रन्थ भारत का प्राचीन इतिहास में महाभारत के युद्ध की अवधि लगभग 1424 ई. पू. बताई हैं। वे लिखते हैं – "यदि हम महाभारत काल को 1424 ई. पू. स्वीकृत करें, तो उससे पहले के राजाओं का काल निश्चित करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। पांडवों का समकालीन कोशल (अयोध्या) का राजा बृहदबल था। बृहदबल और राम में 29 पीढ़ी का अंतर है। इन 29 पीढ़ी के लिए 500 साल का समय निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार रामचन्द्र महाभारत युद्ध से 500 साल के लगभग (1924 ई. पू.) पहले हुए। ईश्वाकु और रामचन्द्र का अंतर 64 पीढ़ियों का है। इनके लिए यदि 1000 साल का समय रख दिया जाय, तो सूर्यवंश के प्रवर्तक ईश्वाकु का समय 3000 ई. पू. के लगभग माना जा सकता है। इस प्रकार आर्यों के जिस राजनीतिक इतिहास का उल्लेख हमने इस अध्याय में किया उसका प्रारंभ 3000 ई. पू. के लगभग हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि यह तिथिक्रम सर्वथा निर्विवाद व सर्वसम्मत नहीं है। मोहनजो दड़ो और हरप्पा के भग्नावशेष से सूचित होने वाली जिस सिन्धु सभ्यता का हमने वर्णन किया है, उसका काल भी 3000 ई. पू. के लगभग था। उस सभ्यता को नष्ट कर भारत में आर्य-राज्य को स्थापित करने वाले आर्यों का इतिहास इसी काल से शुरू होता है।"[38]

उपर्युक्त दो उदाहरणों में जो काल-विषयक दृष्टि या विभावना है वह भिन्न-भिन्न है। पहले की दृष्टि जहां पुराणकार की है, वहां दूसरे की दृष्टि इतिहासकार की है।

(6) पुराणों का तिथिक्रम निश्चित नहीं है, जबकि इतिहास का तिथिक्रम निश्चित होता है। पुराण प्रायः कल्पों, युगों, शताब्दियों और सहस्त्राब्धियों की बात करता है, जैसे कि हमने ऊपर देखा; दूसरी और विस्तृत एवं बृहद-इतिहास ग्रन्थों में तो वर्ष, महीना और दिनांक तक निश्चित होते हैं। इतिहास में भी जैसे-जैसे प्राचीन काल की और अग्रसरित होते हैं तो वहां वर्ष का निर्धारण तो होता है, परन्तु महीने और तारीख का निर्धारण प्रायः अप्राप्त होता है।

(7) इतिहास का महत्व ऐतिहासिक अवधारणाओं और मूल्यों की समझ आदि का महत्व, वैज्ञानिक बुद्धि रखने वाले व्यक्तियों, वर्गों और समाजों में देखा जा सकता है; दूसरी और धार्मिक बुद्धि वाले लोगों में प्रायः पुराणों का अधिक महत्व होता है।

(8) ऐतिहासिक नायकों के संदर्भ में जब किसी ऐतिहासिक नायक के नाम का पुनरावर्तन होता है तो उनके आगे प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम आदि क्रमिक संख्यावाची विशेषण लगाये जाते हैं; जैसे चन्द्रगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय, बाजीराव प्रथम, बाजीराव द्वितीय, सयाजीराव प्रथम, सयाजीराव द्वितीय, सयाजीराव तृतीय, ज्योर्ज प्रचम आठवें एडवर्ड आदि-आदि। ध्यान रहे गायकवाड़ी राज्य के संदर्भ में जिन महाराजा सयाजीराव का उल्लेख बड़ौदा की संस्कारिता या उन्नति के संदर्भ में किया जाता है वह सयाजीराव तृतीय हैं। दूसरी और पुराणों के संदर्भ में इस प्रकार का व्यक्ति-क्रम एक सिरे से नदारद है। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि महाभारत तथा अन्य अठारह पुराणों के रचयिता कोई एक व्यास नहीं, अपितु व्यास-नामधारी कई ऋषि हुए हैं। परन्तु वहां प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि क्रम मिलता नहीं है। ऐसे ही वशिष्ट, विश्वामित्र, नारद, इन्द्र आदि भी विभिन्न युगों में प्राप्त होते हैं और वहां उन सबको एक ही माना गया है। परशुराम त्रेतायुग में भी पाये जाते हैं और द्वापर में भी पाये जाते हैं। पवनपुत्र हनुमान का उल्लेख महाभारत में भी मिलता

है। इस प्रकार के तो अनेकों पौराणिक पात्र हैं जो हमें भिन्न-भिन्न युगों में प्राप्त होते रहते हैं। किन्तु उनके संदर्भ में, उनके काल के संदर्भ में असंदिग्ध रूप से कुछ भी कहा नहीं गया है।

(9) इतिहास के महानायक 'लार्जर धेन लाईफ' होते हैं, पर ऐसे लोग कल्पनातीत नहीं होते। कम ही सही, पर ऐसे पात्र हो सकते हैं। दूसरी और पुराणों के महानायक 'लार्जर धेन इमेनिजेशन' होते हैं।

(10) इतिहास में वर्णित पात्र एवं घटनाएं संभावितता के क्षेत्र में आती हैं। वे सब पौरूषेय होती हैं। जबकि दूसरी और पुराणों में वर्णित कई पात्र एवं घटनाएं अनेक प्रकार के चमत्कारों और असंभव-सी लगती बातों से पूर्ण होते हैं। आम तौर पर ऐसा घटित नहीं होता है, या नहीं हो सकता है।

(11) जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है पुराणों में वर्णित पात्र और घटनाएं कल्पनातीत चमत्कारों से परिपूर्ण होती हैं, परन्तु दूसरी और उनमें सातत्य का अभाव-सा प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कोई एक पात्र एक स्थान पर तो ऐसा कुछ करता हुआ दृष्टिगोचर होता है जो कल्पना की सीमा से भी परे होता है, तो दूसरी ओर वही पात्र अपनी उन्हीं शक्तियों से वंचित-सा दिखाई पड़ता है और उसके लिए कोई तर्क-संगत कारण भी नहीं होता है।

(12) इतिहास पूर्णरूपेण तर्क, बुद्धि और तथ्यों पर आधारित है, जबकि दूसरी ओर पुराणों में वर्णित पात्र एवं घटनाएं पूर्णरूपेण श्रद्धा या विश्वास पर आधृत हैं। वे तर्कातीत हैं। वितर्क और विश्लेषण से कोशों दूर हैं।

(13) इतिहास विषयक विभावना का सीधा सम्बन्ध देशकाल या परिवेश से होता है। इतिहास के अध्ययन के द्वारा हम उस युग के देशकाल या परिवेश को समझ सकते हैं। दूसरी और पुराणों में 'देश' और 'काल' इन दोनों विभावनाओं का एक सिरे से छेद-सा उड़ गया है। पुराणों में वर्णित 'देश' (स्थान) आज भी विवादों का विषय है। रामायण में वर्णित रावण की लंका के संदर्भ में इतिहासविदों और पुरातत्वविदों में अनेक प्रकार के मत-मतांतर उपलब्ध होते हैं। कुछ

वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद डॉ. हसमुख सांकलिया ने रावण की लंका को विन्ध्य से दक्षिण में कहीं बताया था और रामायण भी एक नहीं बल्कि अनेक हैं। एक रामायण के अनुसार सीता रावण-मंदोदरी की ही पुत्री है और ज्योतिष के कथनानुसार वह रावण की मृत्यु का कारण हो सकती थी, इसलिए रावण ने उसे मार डालना चाहा था, परंतु हत्याराओं के हृदय में दयाभाव जाग्रत होने से वे उसे एक घट में बन्द करके दूर कहीं डाल आये थे। यही घट बाद में राजा जनक को प्राप्त हुआ था। अब कहां लंका और कहां मिथिला और वे साधनहीन हत्यारे वहां किस तरह पहुंचे, ये भी प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। इसी तरह काल (टाईम) की विभावना भी पुराणों में अस्पष्ट-सी दिखती है। पुराणों में वर्णित कथाओं और पात्रों की कालगणना या तिथि-गणना अद्यावधि अनिश्चित है। जहां प्राचीन भारत के इतिहासकार और पुरातत्वविद महाभारत के समय को साढ़े-तीन या चार हजार साल पुराना और रामायण के काल को पाँच हजार साल पुराना करार देते हैं, वहां कई संस्कृत के पंडित और पुराणों के व्याख्याकार उसे कई-कई हजार साल पुराना मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि राम के राज्याभिषेक के उपरान्त श्रीराम ने ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया था।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इतिहास एक समाजशास्त्र है। वह तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें कल्पना और फैण्टसी की बिलकुल गुंजाईश नहीं है। उसमें एक निश्चित तिथिक्रम होता है। उसकी देशकाल विषयक विभावनाएं स्पष्ट होती हैं। दूसरी और पुराण भी शास्त्र है किन्तु उसका सम्बन्ध विज्ञान या समाजशास्त्र से ज्यादा न होकर धर्मशास्त्र से है। इतिहास तर्क का विषय है, दूसरी और पुराण आस्था का विषय है। प्रत्येक देशकी अपनी एक संस्कृति होती है और इस संस्कृति के निर्माण में पुराणों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

देश या संस्कृति के निर्माण में पुराणों की उपयोगिता:

किसी भी देश या राष्ट्र या जाति की संस्कृति के मूल में उसके पुराण (मायथोलोजी) होते हैं। जितनी भी पुरानी संस्कृतियां

और सभ्यताएं हैं उनकी अपनी मायथोलोजिकल मान्यताएं और विभावनाएं हैं। उनमें कई तर्कातीत घटनाएं होती हैं, चमत्कार होते हैं, ऐसी बातें होती हैं जिनको हमारी सामान्य बुद्धि सहज रूप से स्वीकार नहीं कर सकती। जिस प्रकार हमारे यहां रामायण और महाभारत हैं, ठीक उसी प्रकार पश्चिम में इलियड और ओडेसी जैसे महाकाव्य प्राप्त होते हैं और उनमें वर्णित घटनाओं में भी बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम मायथोलोजिकल कह सकते हैं। महान जर्मन कवि गेटे को जब किसीने इन महाकाव्यों की सभ्यता के संदर्भ में पूछा तो उनका प्रत्युत्तर था कि जब हमारे पूर्वज इस प्रकार की महान कल्पनाएं करने में सक्षम थे तो हमें इतना सक्षम तो होना चाहिए कि कम से कम हम इन मान्यताओं को स्वीकार करें।[40]

आज से डेढ़-सौ दो-सौ वर्ष पूर्व यूरोप में 'साइण्टिफिक फिक्शन' की एक धारा प्रवाहित हुई थी जिसके तहत कई 'साइण्टिफिक नोवेल्स' लिखे गये। उनमें सायन्स के संदर्भ में जिन फैण्टसीज़ का प्रयोग उनके लेखकों ने किया था, वे वैज्ञानिक अनुसंधान बाद में कई-कई दशकों के पश्चात् हुए। कहने का अभिप्राय यह कि उन लेखकों ने उन वैज्ञानिक उपकरणों की कल्पना पहले कर ली थी और वे वैज्ञानिक अनुसंधान बाद में हुए थे। ठीक उसी प्रकार 'मायथोलोजी' को हम भले इतिहास या पुरातत्वविद्या न माने किन्तु मायथोलोजी, इतिहास, विशेषतः पुरातत्वविद्या के लिए दिशा तो निर्धारित कर सकती है। मायथोलोजी के आधार पर उन स्थानों और कालों का अनुसंधान किया जा सकता है। इस प्रकार मायथोलोजी इतिहास और पुरातत्वविद्या को 'रॉ मटिरियल्स' तो प्रदान कर ही सकती है।

'Archaeology' के लिए अँग्रेज़ी में 'Ancient History and Culture' शब्द भी प्रचलित है। इसमें 'Culture' शब्द का सविशेष महत्व है। किसी भी देश, राष्ट्र या जाति की संस्कृति के उत्स में उसकी 'Mythology' होती है। इस तरह 'Mythology' का एक विशेष महत्व है। इतिहास जहां ठोस तथ्यों पर आधारित होता है, वहां 'Mythology' सांस्कृतिक तथ्यों पर आधारित होती है। और इन

सांस्कृतिक तथ्यों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। उनके साथ एक जाति की आस्था का सवाल जुड़ा हुआ होता है। यहां गुजराती के एक गजलकार का एक शेर स्मृति में कौंध रहा है –

"सवाल ज्यां होय आस्थानो पुरावानी जरूर नथी;
कुरानमां क्यांय पण, मुहम्मदनी सही नथी ।"

अर्थात् जहां आस्था का प्रश्न होता है, वहां प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है, कुरान में कहीं भी पयगंबर के हस्ताक्षर नहीं है, तथापि सब मानते हैं कि कुरान उनकी रचना है। कदाचित् इसीलिए कहा गया है – 'Myth is more stronger than History' सुप्रसिद्ध इतिहासकार ए.एल. भशम का कथन है – "If you read the Ramayana and Mahabharata as History, you will find a lots of mythology; but if you read them as mythology, you will find lots of History."[41] अर्थात् यदि रामायण और महाभारत को आप इतिहास-ग्रन्थ के रूप में पढ़ते हैं तो उनमें आपको बहुत-सी ऐसी बातें प्राप्त होंगी जिनको हम 'Mythology' कह सकते हैं; किन्तु यदि आप उन ग्रन्थों को विशुद्ध 'Mythology' के रूप में ही पढ़ें, तो उनमें आपको बहुत-सी ऐसी बातें मिल सकती हैं जिनका प्रयोग इतिहास के अनुसंधान में आप कर सकते हैं। अभिप्राय यह कि ये दो महाकाव्य हमें तत्कालीन प्राचीन इतिहास की खोज में कई सूत्र दे सकते हैं। उनमें जो कल्पना (Fantacy) और पराभौतिक चीजें हैं, उनको यदि निःशेष किया जाय, तो हमें अपने प्राचीन इतिहास के अनुसंधान में काफ़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। इस दिशा में इतिहासकार डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार आदि के प्रयासों को श्लाध्य कहा जा सकता है। इस संदर्भ में पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम कुछ निर्देश दे चुके हैं।

ऊपर जिन ए. एल. भशन के लेख का जो उल्लेख किया गया है, उसीमें कहा गया है – "The whole debate about whether or not Lord Rama existed as a historical figure is redundant. Even if he was not a historical figure, it does not in any way diminish his value, as a mythological figure, he dominated the consciousness for more than any one out of a history-back. The true beauty of India's great epics, the Ramayana and the Mahabharata lies in the fact that they remain as relevant today as they were millennia ago."[42] इसी

लेख में आगे इतिहास और 'Mythology' के अंतर पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है – "Indeed as Indians we belive in creating myths, and obliterating History. History, after all is often simply a victor's view point of how things were, where as Mythology tells us how people truly longed for them to be"[43]

इसे एक विडम्बना या विचित्रता ही कह सकते हैं कि 'Indian Mythology' के संदर्भ में एक पाश्चात्य विद्वान ए. एल. भशन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'The wonder that was India' में कहा है – "The epics have much to offer us. If only we had the wisdom, vision and humility required to truly comprehend them"[44] प्रस्तुत कथन में ए. एल. भशन महोदय ने बहुत संक्षेप में काफी कुछ कह दिया है। हमें अपने महाकाव्यों के पास एक समझदारी, एक दृष्टि और एक मानवीय दृष्टिकोण लेकर जाना चाहिए और तब उनमें से हम बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं। परंतु इसे हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि हमारे बहुत-से तथाकथित बुद्धिजीवी विद्वान तथा राजनीतिज्ञ हमारे इन दो महाकाव्यों के संदर्भ में निरंतर वाणी-विलास कर रहे हैं।

जैसा कि रामायण और महाभारत के संदर्भ में विद्वान कह रहे हैं कि ये 'काव्य' हैं, 'इतिहास' नहीं; किन्तु उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि ये दोनों महाकाव्य हैं और महाकाव्यों के अभिलक्षणों में यह भलीभांति बताया गया है कि महाकाव्य का विषय, उसका कथानक 'ख्यात' होता है, और जब कोई पात्र या घटना ख्यात होती है, तो कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं उसका अस्तित्व भी रहा होगा। अतः राम या कृष्ण का अस्तित्व ही नहीं था यह कहना अत्युक्ति होगा। उनका इतिहास यदि आज हमारे पास नहीं है तो उस इतिहास की खोज हमें करनी होगी। यह हमारा दायित्व बनता है। क्या सबकुछ पाश्चात्य विद्वान ही करेंगे?

वस्तुतः हमारे उक्त तथाकथित विद्वान और राजनीतिज्ञ जिन मुद्दों की चर्चा करनी चाहिए, और जिस तरह से करनी चाहिए, वह करते ही नहीं है। इन दिनों में (सन् 2007) 'सेतुसमुद्रम्' परियोजना के संदर्भ में तरह-तरह के विवाद उठ रहे हैं। वस्तुतः यहां मुद्दा यह

होना चाहिए कि इस परियोजना से हमें लाभ होगा या नुकशान? उसके सभी पक्षों पर वैज्ञानिक, तार्किक दृष्टि से विचार होना चाहिए और उसके केन्द्र में हमारे देश के हित को ही रखना चाहिए। इस संदर्भ में मेघनाद देसाई के निम्नलिखित विचार अवश्य चिन्तनीय हैं – "Politics has lost its capacity for uniting the country. It do longer offers a story of India that can bind together. It has also lost touch with young, modern India. It offers no role models for the millions of young. A new young India is thinking confidently and wants to get on with jobs, gadgets traveled sex and of course, winning. This is why sports unite people, while politics divide them. First we have the amazing success of a film like 'Chak de India' which played on Indianness of the woman hockey players coming from all over India plus their Muslim coach. Then there has been the twenty 20 success. Everyone could understand the confident, hard working, hard celebrating Indian side. This is young India and indeed none metro-politan India"[45] यह इसलिए कहना पड़ रहा है कि हमारे तथाकथित विद्वान एवं राजनितिज्ञ हमेशा अपने न्यस्त हितों को साधने के लिए 'None issue' को ही 'issue' बनाते रहे हैं। इतिहास और पुरातत्व का महत्व है। पहले हमने इनकी अवगणना की या उनके संदर्भ में अज्ञात रहे, यह उपयुक्त नहीं था। इन विषयों का अपने आपमें महत्व है और इस वैज्ञानिक युग में उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। परन्तु इसके साथ ही हमें अपनी 'Mythology' के महत्व को समझना होगा। वह कपोलकल्पित है, गप्पबाजी है, अतार्किक या अबौद्धिक है, ऐसा कहकर उसका मजाक उड़ाने के स्थान पर गंभीरतापूर्वक उसके अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि हो सकता है जो बात आज हमें कपोलकल्पित लगती है, आने वाले युग में उसकी वैज्ञानिकता प्रमाणित हो जाय। हमारे पुराणों में बलराम के जन्म के संदर्भ में बताया गया है कि पांचवे महीने में बलराम का गर्भ देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भाशय में स्थापित किया गया था। उस समय यह बात चमत्कारपूर्ण या कपोलकल्पित प्रतीत होती थी, किन्तु आज के विज्ञान ने 'सरोगेट मधर' की विभावना को सत्य प्रमाणित कर दिया है। कहा जाता है कि दुर्वासा का जन्म जंघा से हुआ था। उसी प्रकार व्यक्ति के कोश में से भी पुत्र-प्रसव की बातें पुराणों में उपलब्ध होती हैं और आज हम जानते हैं कि आज का

विज्ञान उस दिशा में अग्रसरित हो रहा है।[46] इसलिए 'मायथोलोजी' के महत्व को समझते हुए उसमें निहित सूत्रों का हमें अनुसंधान करना चाहिए।

पौराणिक उपन्यास : विभावना :

'पौराणिक' शब्द 'पुराण' में 'इक' प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार राजनीति से जुड़े उपन्यास राजनीतिक उपन्यास, इतिहास के वृतान्त पर आधारित उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास, किसी अंचल-विशेष से जुड़े उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहलाते है; ठीक उसी तरह पौराणिक वृतान्त पर आधारित उपन्यासों को 'पौराणिक उपन्यास' की संज्ञा दी गई है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के कतिपय आलोचक एक लम्बे अरसे तक पौराणिक उपन्यासों को भी ऐतिहासिक बताते रहे हैं।[47] कदाचित् यह 'पुराण' को ही 'इतिहास' समझ लेने की भ्रान्ति के कारण हुआ होगा। परंतु अब यह लगभग प्रस्थापित हो चुका है कि 'इतिहास' और 'पुराण' ये दोनों अलग-अलग हैं। यह बात और है कि आज जिस काल-खण्ड को पुराण में परिगणित करते हैं, भविष्य में नवीन ऐतिहासिक वा पुरातात्विक अनुसंधानों के परिणाम-स्वरूप उसे इतिहास में समाविष्ट कर दिया जाय। किन्तु जब तक यह नहीं होता है, तब तक 'पुराण' पुराण ही रहेगा और इतिहास इतिहास ही। यहां हमारा अभिप्राय उभय में से किसीके भी महत्व को कम आंकने का नहीं है, किन्तु वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से एक सत्य को उद्घाटित करने का ही है। डॉ. त्रिभुवनसिंह, डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. पारूकान्त देसाई प्रभृति हिन्दी के औपन्यासिक आलोचकों ने 'पौराणिक उपन्यास' की सत्ता को अंगीकृत किया है।[48]

अतः यह स्पष्ट हो चुका है कि जहां से हमें अपने इतिहास की सिलसिलेवार शृंखला, तिथिक्रम, राजनीतिक वंशावलि आदि प्राप्त होते हैं; वहां से हम अपने इतिहास का प्रारंभ मान सकते हैं। अर्थात् हमारा इतिहास अभी अधिक-से-अधिक तीन साढ़े-तीन हजार साल पुराना है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इसके पहले हमारा इतिहास

नहीं था। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक हैं। जब हमारी संस्कृति इतनी प्राचीन है, तो उसका इतिहास भी अवश्यमेव रहा होगा। किन्तु इतिहासलेखन की विभावना, जैसी पश्चिम तथा अन्यत्र प्रवर्तमान थी, वैसी विभावना हमारे यहां नहीं होने के कारण उसका व्यवस्थित तिथिवार (Chronological) इतिहास फिलहाल हमें उपलब्ध नहीं है। अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य पुरातत्वविद (Archaeologist) इस कार्य में जुटे हुए हैं, और वह दिन दूर नहीं हैं, जब कृष्ण के समय की सिलसिलेवार घटनाएं तिथिक्रम के साथ हमारे सामने होंगी और तब उनका शुमार भी इतिहास में होगा। फिलहाल तो हम इतिहास का सीमांकन वहां से कर सकते हैं, जहां से हमें व्यवस्थित, निश्चित, क्रमिक तिथिक्रम मिलता है। इस तरह सिन्धु-घाटी की संस्कृति, हड़प्पन-संस्कृति, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, मौर्यवंश, श्रृंग वंश, कण्व वंश, गुप्तवंश आदि को भारत के प्राचीन इतिहास में समाविष्ट कर सकते हैं। इसके पहले की घटनाओं को हम पौराणिक मानते हैं। अतः उपर्युक्त समय-सीमा पर आधारित उपन्यासों को ऐतिहासिक कहा जायेगा और उसके पूर्व की घटनाओं पर आधारित उपन्यासों 'पौराणिक उपन्यासों' की संज्ञा दी जायेगी। अतः मोटे तौर रामायण, महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, शिवपुराण आदि पुराणों पर आधारित उपन्यासों को पौराणिक उपन्यासों की परिसीमा में रखा जायेगा।

किन्तु ध्यान रहे, उपन्यास और पौराणिक आख्यानों में अंतर है। उपन्यास हर हालत में अपनी यथार्थधर्मी प्रकृति के कारण यथार्थ की धुरी को छोड़ नहीं सकता। उपन्यास के पात्र और घटनाएं यथार्थ पर अवलंबित होती है। अतः उनमें संभावितता 'Probability' का गुण होना ही चाहिए। उपन्यास के पात्र और घटनाओं को पढ़ते समय यदि पाठक महसूसता है कि यह तो असंभव है, ऐसा तो किस्से-काहानियों में ही हो सकता है, वास्तविक जीवन में नहीं, तो उसे उपन्यासकार की असफलता समझनी होगी। उपन्यास के पात्र और घटनाएं, चाहें समसामयिक हों चाहे ऐतिहासिक, चाहे पौराणिक; किन्तु उनमें उपर्युक्त 'Probability' का गुण होना अनिवार्य है। अतः

उपन्यास भले ही पौराणिक वृतान्त पर आधारित हो, किन्तु उसे यथार्थ की कसौटी पर खरा उतरना होगा। और यहां पर पौराणिक उपन्यासकार की परीक्षा होती है, क्योंकि पौराणिक वृतान्तों में चमत्कारपूर्ण घटनाओं, असंभव घटनाओं और मिथक कथाओं की भरमार होती है। अतः इन असंभव-सी प्रतीत होने वाली कथाओं को यथार्थ के धरातल पर लाना पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहें तो उन चमत्कारपूर्ण मिथक कथाओं के रूपकार्थों या प्रतीकार्थों को पकड़ते हुए उनको अधिकाधिक युक्तियुक्त और तर्कसंगत बनाने की भरसक चेष्टा वहां की जाती है। जैसे पुराणों में वर्णित है कि आर्यऋषि अगस्त्य विन्ध्यांचल को झुकाकर दक्षिण की ओर जाते हैं। अब पुराणों में तो विन्ध्य-पर्वत का भी मानवीकारण हुआ है। वह अगस्त्य ऋषि के साथ वार्तालाप भी करता है, परंतु अगस्त्य ऋषि की तप-साधना और योगबल से वह आज्ञांकित शिशु-सा हो जाता है और वह गगनचुंबी पर्वत झुककर इतना छोटा हो जाता है कि उसको लांघकर दूसरी तरफ जाया जा सके। और फिर ऋषि उस पर्वत को तब तक उसी अवस्था में स्थित रहने की आज्ञा देते हैं, जब तक दक्षिण से उनका पुनरागमन न हो। अगस्त्य दक्षिण से फिर कभी लौटते ही नहीं है और विन्ध्य-पर्वत उसी अवस्था में रहता है। इस पौराणिक घटना से एक मुहावरे की भी सृष्टि हुई है – अगस्त्य के वायदे।

अब इसमें चमत्कार का जो तत्व है उसका डॉ. नरेन्द्र कोहली ने निरसन किया है। उस युग में अगस्त्य से पूर्व विन्ध्य-पर्वत अलंघ्य रहा होगा, किन्तु अगस्त्य अपनी कुछ तकनीकी कुशलता का प्रयोग करके उसे लांघ जाते हैं और यह पद्धति वह अन्य लोगों को भी सीखा देते हैं, या उन्हें उस तरह से प्रशिक्षित करते हैं कि वे उस पर्वत को लांघ सके। इस प्रकार अगस्त्य और विन्ध्य के संदर्भ में जो मिथक-कथा थी उसका तार्किक और बुद्धिगम्य समीकरण डॉ. कोहली अपने रामायण पर आधारित उपन्यास 'संघर्ष की ओर' में प्रस्तुत करते हैं।[49]

हिन्दी साहित्य कोश भाग-2 में ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ-साथ पौराणिक उपन्यासों का भी उल्लेख किया गया है। यथा –

"कथा के स्रोतों के आधार पर वर्गीकरण करके इन्हीं उपन्यासों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आदि अनेक विभेद हो सकते हैं।[50] यहां पर वर्गीकरण के संदर्भ में पौराणिक और ऐतिहासिक आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि ऐतिहासिक और पौराणिक ये दो भिन्न-भिन्न विभावनाएं हैं। 'हिन्दी साहित्य-कोशकार' ने भी इसे मान्यता प्रदान की है। इसी ग्रन्थ में ही उपन्यासों के वर्गीकरण के संदर्भ में पुनः कहा गया है – 'बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में आकार और विधान की दृष्टि से घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान और भावप्रधान उपन्यास प्राप्त होते हैं। घटनाप्रधान उपन्यास तिलस्मी, साहसिक, जासूसी, प्रेमाख्यानक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा विविध प्रकार के उपन्यासरूपों की कोटियां हैं।"[51]

इसी क्रम में पौराणिक उपन्यासों की जो सूची दी गई है, उससे ही पौराणिक उपन्यास की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। वह सूची इस प्रकार है – 'सती सीता', 'वीर कर्ण', 'एकलव्य', 'परशुराम', 'सुभद्रा', 'अनसूया', 'चन्द्रलेखा', 'सती सीमंतिनी', 'सती मदालसा' आदि-आदि। ये उपन्यास पौराणिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। [52]

इन उदाहरणों से ही पौराणिक उपन्यास की विभावना अधिक स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि कई बार उदाहरणों के द्वारा किसी वस्तु की विभावना को भलीभांति समझा जा सकता है। शिक्षा-शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि कई बार जो बात सैद्धान्तिक परिभाषाओं से स्पष्ट नहीं होती, वह बात उदाहरणों के माध्यम से तुरंत स्पष्ट हो जाती है।

उपर्युक्त सभी उपन्यास प्रायः रामायण – महाभारत या किसी पुराण पर आधृत हैं। इनमें से कोई भी चरित्र ऐतिहासिक चरित्र नहीं है। प्रस्तुत साहित्यकोश सन् 1963 में संपादित हुआ है। तब आश्चर्य इस बात पर होता है कि सन् 1963 में संपादित साहित्यकोश में हमें पौराणिक उपन्यास के संदर्भ में सोदाहरण विवरण प्राप्त होता है, किन्तु बाद में प्रकाशित डॉ. रामदरश मिश्र के उपन्यास विषयक ग्रन्थ – 'हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा' में इस

प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. मिश्र का ध्यान कदाचित इस ओर नहीं गया होगा। अन्यथा वे पौराणिक उपन्यास को ऐतिहासिक लिखने की गलती न करते।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने भी कुछेक पौराणिक उपन्यासों की सृष्टि की है। अपने पौराणिक उपन्यास "प्रथम पुरुष" की भूमिका में वह लिखते हैं – "पुराण और इतिहास में यद्यपि अंतर नहीं है, क्योंकि पुराणों का आधार भी इतिहास ही होता है। किन्तु पुराणकारों की यह विशेषता होती है कि वे अतिशयोक्ति और रूपकों का सहारा लेकर ऐतिहासिक गाथा को सामान्यजन के मध्य लोकप्रिय बनाने का प्रयास करते हैं। साथ ही जो पुराण जिस व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित होता है, उसीको वह सर्वोपरि मानता है और उसे ईश्वर तक पहुंचाने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में अगर पुराणों को अतिशयोक्तियों और अनावश्यक रूपकों से मुक्त कर दिया जाय तो पौराणिक आख्यान भी ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में आ सकते हैं। मैं यह कहने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा कि मैंने इस उपन्यास को पौराणिक कम ऐतिहासिक अधिक बनाने का प्रयास किया है। दूसरे शब्दों में मैं इसे पौराणिक उपन्यास कहने के बदले ऐतिहासिक उपन्यास कहना अधिक पसंद करूंगा।"[53]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र का उपर्युक्त कथन अपने आप में अनेक अंतर्विरोधों से परिपूर्ण है। उनका प्रथम वाक्य – "पुराण और इतिहास में यद्यपि अंतर नहीं है" --- ही विवादास्पद है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम पुराण और इतिहास के अंतर को भलीभांति स्पष्ट कर चुके हैं। उन्होंने अपने उपर्युक्त वाक्य में बीच में "यद्यपि" शब्द प्रयुक्त किया है। यह शब्द ही बहुत कुछ कह जाता है। यह शब्द इस बात को तर्कतः सिद्ध करता है कि उभय में वस्तुतः अंतर है। वह सीधे कहते कि "पुराण और इतिहास में अंतर नहीं है"। परंतु 'यद्यपि' उनके मन की संदिग्धता को व्यक्त करता है। अपने उपर्युक्त कथन में वह कहते हैं कि पुराणों का आधार भी इतिहास है। वस्तुतः यह बात ही अपने आपमें विरोधाभासी है। दरअसल इतिहास का आधार पुराण हो सकते हैं। पुराणों के आधार पर इतिहास की खोज की जा सकती है।

ऐतिहासिक अनुसंधान के जो विभिन्न स्रोत होते हैं उनमें पुराण भी एक स्रोत हो सकता है। जिस दिन वह अनुसंधान की प्रक्रिया पूरी हो जायेगी उस दिन 'पुराण' इतिहास में परिवर्तित हो जायेगा। किन्तु जब तक ऐसा नहीं होता है, पुराण पुराण ही रहेगा और इतिहास इतिहास ही। डॉ. मिश्र स्वयं इस बात को अंगीकृत करते हैं कि पुराणों में अतिशयोक्तियों और रूपकों का सहारा लिया जाता है, जबकि दूसरी ओर इतिहासकार के लिए इन दोनों वस्तुओं का महत्व नहीं है, सिवाय इसके कि इसका निरसन करके किसी तथ्य का वे अन्वेषण करें। इस प्रकार इतिहास 'Matter of Facts' में विश्वास रखता है। साथ ही डॉ. मिश्र अपने उक्त कथन में यह भी स्वीकार करते है हैं कि पुराण जिस व्यक्ति के संदर्भ में होता है वह उसको सर्वोपरि मानता है और उसे ईश्वर की कोटि तक पहुंचाने का प्रयास करता है; जबकि दूसरी तरफ इतिहासकार ऐसा नहीं कर सकता। तथ्यात्मक दृष्टिकोण से, यथासंभव तटस्थ रहकर वह अपना लेखन करता है। दो महान ऐतिहासिक व्यक्तियों की तुलना करते समय वह किसीका पक्षधर नहीं हो जाता, बल्कि तथ्यों के आधार पर विश्लेषण करता है। और यदि वह किसी ऐतिहासिक चरित्र को महान मानता है तो उसके लिए उपयुक्त प्रमाणों को प्रस्तुत करता है। केवल हवा में गोलीबार करना यह इतिहासकार का "मोटो" नहीं हो सकता। अपने कथन में डॉ. मिश्र कहते हैं कि अगर पुराणों को अतिशयोक्तियों और अनावश्यक रूपकों से मुक्त कर दिया जाय तो पौराणिक आख्यान भी इतिहास की प्रामाणिकता को प्राप्त कर सकते हैं। यहां पर डॉ. मिश्र कुछ चूक से गये हैं। उन्होंने 'रूपकों के ' पूर्व 'अनावश्यक' विशेषण लगाया है, जबकि पुराणों के संदर्भ में ये रूपक उनके प्राण-तत्व हैं और जो प्राण-तत्व हो वह भला अनावश्यक कैसे हो सकता है? डॉ. मिश्र कहते हैं कि इन अतिशयोक्तियों और रूपकों को हटा देने से पुराण भी इतिहास की प्रामाणिकता प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः यह खयाल ही भ्रान्तिमूलक है क्योंकि उसके बाद भी इतिहास के लिए बहुत कुछ जुटाना पड़ता है। इतिहास में एक निश्चित तिथिक्रम (Chronological Order) होता है, जिसके अभाव में कोई कथा इतिहास नहीं बन सकती।

डॉ. मिश्र कहते हैं कि यदि पुराणों से अतिशयोक्तियों और रूपकों को हटा दिया जाय तो पौराणिक आख्यान इतिहास की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं और तब पौराणिक उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में आ सकते हैं। किन्तु उनका यह कथन भी तर्क-संगत नहीं है क्योंकि वह जो कहते हैं वह तो पौराणिक उपन्यास की एक आवश्यक शर्त है। अतिशयोक्तियों और रूपकों को हटाने के बाद ही कोई उपन्यासकार पौराणिक आख्यान को पौराणिक उपन्यास का रूप दे सकता है। पौराणिक उपन्यास पौराणिक उपन्यास ही रहेगा, वह ऐतिहासिक उपन्यास तभी बनेगा जब पौराणिक आख्यान इतिहास में तब्दील होगा। जब वह पुराण-कथा इतिहास के लिए आवश्यक तत्वों की पूर्ति करेगा। अतः कहना चाहिए कि 'प्रथम पुरुष' डॉ. मिश्र का पौराणिक उपन्यास ही है। वह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है।

अभिप्राय यह कि ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक ये दोनों उपन्यास के अलग-अलग प्रकार हैं और यदि कोई लेखक अपने पौराणिक उपन्यास में तार्किकता, वैज्ञानिकता, यथार्थता नवीन अर्थघटन या आधुनिक भावबोध को लाने का प्रयत्न करता है और उनमें निरूपित चमत्कारिक घटनाओं की वैज्ञानिक-तार्किक व्याख्या करता है, तो उससे वह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास नहीं हो जायेगा, क्योंकि यह सब करना तो उपन्यास-सृजन की बुनियादी शर्तें है। इनके अभाव में तो वह पौराणिक आख्यान ही रहेगा, उपन्यास नहीं। सीधी-सी बात है, ये प्रकार घटना-प्रधान उपन्यास के हैं और उनका सीधा सम्बन्ध कथावृतान्त के स्रोतों से हैं। यदि कथा इतिहास पर आधारित है तो उपन्यास ऐतिहासिक कहलायेगा और अगर वह पुराण पर आधारित है तो उपन्यास पौराणिक कहलायेगा।

पौराणिक उपन्यास के सूत्रधार डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपने प्रथम पौराणिक उपन्यास 'दीक्षा' की सृजन-यात्रा के विषय में लिखा है – 'हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों को देने वाले शिव हैं... निश्चित रूप से वे एक विकसित शस्त्रशाला (Ordinance Factory) के प्रतीक हैं। अतः यह शिव-धनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए जिसे सीरध्वज ने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु

बना दिया, जिसे सैंकड़ों मनुष्य और पशु खींचकर रंगस्थली में लाते हैं और पसीना-पसीना हो जाते हैं। मैंने शिव-धनुष को आधुनिक टैंक जैसे किसी यंत्र के रूप में स्वीकार किया है। यह प्रत्येक बात का हठपूर्वक आधुनिक समाधान देने का प्रयत्न नहीं है; यह शिव के महान शस्त्र-निर्माता रूप को दृष्टि में रखकर आगे की घटनाओं की पृष्ठभूमि स्वरूप की गई कल्पना है। राम-रावण के अंतिम युद्ध तक देवताओं और राक्षसों द्वारा, शिव से शस्त्रास्त्र प्राप्त करते रहने की होड़ लगी रहती है – जैसे आज के युग में छोटे देश, रूस तथा अमरिका जैसी महाशक्तियों से शास्त्र मांगते रहते हैं।[54]

इस संदर्भ में डॉ. गोपालराय ने अपनी सार्थक आलोचनात्मक टिप्पणी देते हुए कहा है – "इस उपन्यास-शृंखला (रामकथा के उपन्यास) में नरेन्द्र कोहली ने परंपरागत रामकथा को अपने समय के अनुसार नया अर्थ, संदर्भ और सृजनात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः यह उपन्यास के रूप में रामकथा की समकालीन और आधुनिक संदर्भ-युक्त पुनः रचना है जिसमें रामको आधुनिक, सामंती-पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण, अत्याचार और दमन से त्रस्त मानवता के उद्धारकर्ता जन-नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुराण-पुरुष विष्णु के अवतार राम को इस संघर्ष में जन-नेता के रूप में प्रस्तुत करना और राक्षसी-व्यवस्था के साथ इस संघर्ष को मानवीय धरातल प्रदान करना इस उपन्यास की अन्यतम विशेषता है... इसमें कोई संदेह नहीं कि नरेन्द्र कोहली ने समकालीन राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्थितियों और सरोकारों को गहरी संवेदनशीलता और गहन चिंतन के साथ प्रस्तुत किया है।"[55]

अभिप्राय यह कि नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक रामकथा को समकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है और यह कार्य प्रत्येक उपन्यासकार को करना पड़ता है, क्योंकि उपन्यास यथार्थधर्मी विधा है। फलतः कोई भी उपन्यासकार अपने साम्प्रतिक यथार्थ से मुंह नहीं मोड़ सकता। अपने साम्प्रतिक यथार्थ को उपन्यासकार कई तरीकों से प्रस्तुत करता है, जैसे कुछ लेखक एतदर्थ समसामयिक (Contemporary) घटनाओं का संयोजन

करते हैं, तो कुछ लेखक उसे इतिहास के आईने में देखने का यत्न करते हैं, तो कुछ लेखक (डॉ. नरेन्द्र कोहली जैसे लेखक) पौराणिक कथा के वातायन से यह कार्य सिद्ध करते हैं। प्रथम अवस्था के उपन्यास को हम सामाजिक, राजनीतिक, आंचलिक आदि की संज्ञा देते हैं तो दूसरी और तीसरी कोटी के उपन्यासों को हम क्रमशः ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यास की संज्ञा देते हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि कोई उपन्यास ऐतिहासिक होने मात्र से महान नहीं हो जाता या पौराणिक होने से उसका महत्व कम नहीं हो जाता। 'अपने अपने राम' पौराणिक उपन्यास है, परंतु शायद इस उपन्यास ने हिन्दी के प्रत्येक औपन्यासिक आलोचक का ध्यान आकर्षित किया था।

अतः डॉ. भगवतीशरण मिश्र जैसे लेखकों को यह समझ लेना चाहिए कि उनका 'प्रथम पुरुष' उपन्यास पौराणिक ही है और पौराणिक उपन्यास को ऐतिहासिक कह देने मात्र से उपन्यास के महत्व में कोई विशेष इजाफा होने वाला नहीं। वस्तुतः औपन्यासिक कला, वस्तु-प्रतिश्रुतता, लेखकीय संनिष्ठा और शिल्प के कारण ही कोई उपन्यास अच्छा या श्रेष्ठ उपन्यास बनता है। हिन्दी की औपन्यासिक आलोचना में एक दौर आंचलिक उपन्यासों का चला था। 'मैला आँचल' की अद्वितीय सफलता के कारण, तब तमाम, ग्रामभित्तीय उपन्यासों को आंचलिक घोषित करने की होड़-सी मची थी। ध्यान रहे 'गोदान', 'रंगभूमि' आदि उपन्यास आंचलिक ने होते हुए भी श्रेष्ठ उपन्यास हैं।

जिस प्रकार वास्तविक सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक समाजवादी, आंचलिक इत्यादि औपन्यासिक प्रवृत्तियों का सूत्रपात क्रमशः प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, यशपाल, रेणु आदि से माना जाता है; ठीक उसी प्रकार वास्तविक पौराणिक उपन्यास का सूत्रपात डॉ. नरेन्द्र कोहली से हुआ ऐसा कहा जा सकता है। डॉ. कोहली के प्रथम पौराणिक उपन्यास 'दीक्षा' के संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं–

"एक तरफ रामायण की मूल कथा से संशिलष्ट पौराणिक आख्यानों का मर्म पकड़ना और दूसरी तरफ आज के युग-संदर्भ में वैसी ही परिस्थितयों से जूझते हुए मानव की नियति समझना और उनका समाधान खोजना कोहली के लिए इस उपन्यास की प्रेरणा का मूल बीज रहा है। कोहली ने पाकिस्तानी सेनाओं के नृशंस अत्याचारों से पीड़ित बांगला देश की निरीह जनता की पीड़ा को राम-रावण युद्ध के संदर्भ में समझने की कोशिश की है। यह कोशिश लेखक को लोकमानस से जोड़ने वाली तो है ही, साथ ही कुछ ऐसी भी प्रेरणा देती है जो अन्याय और अनीति का विरोध करने के लिए कटिबद्ध हों। रामकथा के परंपरानुमोदित पात्र, चरित्र और तथ्य कोहली के लिए ज्यों के त्यों स्वीकार्य नहीं रहे। युगीन संदर्भ में बौद्धिक विमर्श के सहारे उसने घटनाओं और चरित्रों को नये सिरे से गढ़ा और गढ़कर पठनीय बनाया। एक बार जब कथा के पात्र पाठक के मन में उत्तर गये और अपनी बात सुनाने लगे तब शायद पाठक का पुरातनता प्रेमी मन भी उनमें उलझ गया। यह भी कम विस्मयजनक नहीं है कि रामायण की रामकथा तो अयोध्या से शुरू होती है, 'दीक्षा' में विश्वामित्र के आश्रम से प्रारंभ होकर विश्वामित्र के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटती है। विश्वामित्र के पास एक लम्बी कहानी है जो रामकथा की नूतन व्याख्या है; ऐसी सटिक व्याख्या जिसमें कथारस तो है ही; बुद्धि, तर्क, विज्ञान, विवेक और घटनाओं की संगति भी है।"[56]

यहां डॉ. स्नातक ने 'दीक्षा' के संदर्भ में जो सारगर्भित और सार्थक टिप्पणी दी है, वह वस्तुतः पौराणिक उपन्यास के आवश्यक तत्वों को निरूपित करती है। वस्तुतः पौराणिक उपन्यासकार कथा तो पुराणों से लेता है किन्तु उसका निर्वाह (Treatment) आधुनिक संदर्भ में, आधुनिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में; बुद्धि, तर्क, विज्ञान, विवेक और संगति के साथ करता है। वस्तुतः 'दीक्षा' का कल्पना-बीज सन् 1971 के भारत-पाकिस्तान के युद्ध और बांगलादेश के निर्माण की घटनाओं में पड़ा हुआ है। स्वयं डॉ. नरेन्द्र कोहली ने उसका संकेत देते हुए कहा है कि जब भी किसी युद्ध की बात आती है, जनमानस

में महाभारत की कल्पना उभर आती है, किन्तु बांगला-देश के निर्माण हेतु खेला गया भारत-पाकिस्तान युद्ध अनेक दृष्टियों से रामायण के निकट पड़ता है। रामायण में आर्यावर्त की सेनाएं प्रथमतः एक दूसरे देश – लंका में प्रविष्ट होती है। बांगला देश के निर्माण के समय भी भारत की सेनाएं एक दूसरे देश में (तब का पूर्व पाकिस्तान) 'प्रविष्ट होती हैं। रामायण का युद्ध सीता की मुक्ति के लिए, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ खेला गया था, बांगला देश का युद्ध भी बांगला देश के निरीह बुद्धिजीवी और जनता की मुक्ति के लिए खेला गया था। राम-रावण के युद्ध में रावण-वध के उपरांत लंका की सत्ता के सूत्रों को लंका के ही एक सुयोग्य व्यक्ति – विभीषण – को सौंपा जाता है और विजेता व्यक्ति राम उस देश पर अपना कोई अधिकार स्थापित नहीं करते हैं और कार्य संपन्न होती ही अपनी सेनाओं को वापस अपने देश में बुला लेते हैं। ठीक यही बात बांगला देश के युद्ध के समय भी हुई थी। युद्ध में विजय के उपरांत तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सत्ता के सूत्र बांगला देश के बंगबंधु मुजिबर रहमान के हाथों सौंपकर भारतीय सेनाओं को वापस बुला लेती हैं। बांगलादेश के युद्ध में भारतीय सेनाएं बांग्लादेश की मुक्तिवाहिनी की सहायता करती है। राम-रावण युद्ध में भी इसी प्रकार की एक मुक्तिवाहिनी वानर, रींछ आदि तत्कालीन आदिवासी जातियों से निर्मित हुई थीं। इस प्रकार यह युद्ध (बांगला देश का युद्ध) अनेक दृष्टियों से रामायण में वर्णित युद्ध से मेल खाता है।[57]

उपर्युक्त चर्चा से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि पौराणिक उपन्यास भी उपन्यास होने के कारण यथार्थ के तमाम आयामों का निर्वाह करता है और यथार्थ-निर्माण की इस प्रक्रिया के तहत वह पौराणिक मिथकों और रूपकों की तार्किक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह तत्कालीन देशकाल का तो यथार्थ वर्णन करता ही है, परंतु उसमें निरूपित घटनाओं की तार्किक संगति कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप व परिमाण में समसामयिक वा वर्तमान घटनाओं से भी बिठाता है।

पौराणिक उपन्यास के मूल में कोई-न-कोई 'मिथक' या 'पुराकथा' होती है और डॉ. नरेन्द्र कोहली के ही शब्दों में 'मिथक' या 'पुरा-कथा' में सबसे बड़ा गुण यह है कि उलट-पुलट कर सकते हैं... उसके स्वरूप को बनाए रखते हुए। तुलसी ने जब रामकथा लिखी तब वाल्मीकि द्वारा स्थापित 'मिथक' सामने थे... तब किसीने कुछ नहीं कहा। मैं इस चुनौती को स्वीकार करता हूं कि प्रमुख घटनाओं और पात्रों को कहीं तोड़ा-मरोड़ा गया हो तो मुझे बतायें... ऐसा कहीं नहीं हुआ है।"[58]

वस्तुतः ऊपर उल्लिखित बात डॉ. नरेन्द्र कोहली ने उनके ऊपर की गई टिप्पणी के उत्तर के रूप में कही है। नरेन्द्र कोहली पर आलोचकों की जो टिप्पणी थी, वह इस प्रकार है – "नरेन्द्र कोहली के लिए रामकथा के मिथकीय रूप का तो जैसे अस्तित्व ही नहीं है।"[59]

किन्तु नरेन्द्र कोहली के उक्त उत्तर में प्रकारान्तर से उन्होंने पौराणिक उपन्यास का एक अभिलक्षण अवश्य प्रकट कर दिया है कि पौराणिक उपन्यास में मिथक या पुरा-कथा को उलट-पुलट सकते हैं। शर्त यह है कि उससे मूल रूप पर कोई व्याघात नहीं होना चाहिए। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उनके 'दीक्षा' उपन्यास के ही एक मिथक का उदाहरण लिया जा सकता है। वह मिथक है ऋषि के शाप से अहल्या का शिला में परिवर्तित हो जाना। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इस मिथक के स्वरूप को बनाए रखते हुए उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। 'दीक्षा' में निरूपित अहल्या ऋषि के श्राप से नहीं अपितु परिस्थितिजन्य आघातों – प्रहारों के कारण शिलाभूत हो गई है, उसकी चेतना जड़ीभूत हो गई है। चेतना का यह जड़ीभूत होना ही पत्थर हो जाना है। बाद में राम और लक्ष्मण की सहानुभूति और मानवीय संवेदना के कारण उसकी चेतना लौट आती है और उसमें पुनः चैतन्य का संचार होता है।[60]

डॉ. कौशलकिशोर ने डॉ. कोहली के 'अभिज्ञान' उपन्यास के संदर्भ में जो टिप्पणी की है वह पौराणिक उपन्यास की प्रवृत्ति और प्रकृति को समझने में सहायक हो सकती हैं। यथा – "सुदामा और श्रीकृष्ण की पुराणकथा को दोहराना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं,

उपलक्ष्य मात्र है। उनकी अनन्य मैत्री अन्य पौराणिक प्रसंगों का वर्णन इस उपन्यास के स्थूल उपादान है, जबकि वास्तविक सूक्ष्म उपकरण तो वे हैं, जिसके 'मिथकीय सत्य' भीतर से आधुनिक भारत की कहानी को उभारते है। जिसमें उपन्यासकार ने भारत की सदियों पुरानी हास्य-मनोवृत्ति, राजनीतिक उठक-पटक, निजी स्वार्थपरताएँ और क्षुद्रता, बुद्धिजीवियों का मुखौटाधारी चेहरा और दोहरे मानदण्डयुक्त जिन्दगी, राजनीति की सर्वत्र वर्चस्वता एवं व्यापक मूल्यस्खलन आदि का समाजवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इस प्रकार यह उपन्यास अतीत से सम्द्ध होकर भी अपनी संवेदना, दृष्टि, विचार, चिन्तन और विश्लेषण में पूर्णतः नया और आधुनिक है।"[61]

डॉ. त्रिभुवनसिंह ने अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' में ऐतिहासिक उपन्यास के संदर्भ में 'ऐतिहासिक यथार्थ' के तहत ऐतिहासिक उपन्यासों की विस्तृत विवेचना एक अलग स्वतंत्र अध्याय के अन्तर्गत की है।[62] और वहां पर उन्होंने जिन उपन्यासों की चर्चा की है उससे उनकी ऐतिहासिक उपन्यासों की विभावना भी स्पष्ट हो गई है। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ में ही चौबीसवें अध्याय में 'विकास की दिशाएं' शीर्षक के तहत उपन्यास के संदर्भ में तीन धरातलों का उल्लेख किया है – आंचलिक धरातल, ऐतिहासिक धरातल और पौराणिक धरातल। पौराणिक धरातल के उपन्यासकारों में उन्होंने अमृतलाल नागर, के 'एकदा नैमिषारण्ये', नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' और 'युद्ध' (दो खण्डों में) तथा महाभारत के कथानक पर आधारित 'महासमर भाग-1 से 3'; मनु शर्मा के उपन्यासों में 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा' आदि का उल्लेख किया है। डॉ. त्रिभुवनसिंह ने पौराणिक धरातल में केवल उन उपन्यासों को लिया है जो काल-विभावना की दृष्टि से पौराणिक समय में आते हैं। ऐतिहासिक धरातल और पौराणिक धरातल – यों दो धरातलों की वे बात करते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि वे ऐतिहासिक उपन्यासों को पौराणिक उपन्यासों से अलग रखते हैं। डॉ. सिंह ने डॉ. कोहली के महाभारत पर आधृत केवल तीन

उपन्यासों का उल्लेख किया है, क्योंकि उनके उपर्युक्त ग्रन्थ का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण के प्रकाशन तक डॉ. कोहली के महाभारत पर आधारित उपन्यासो में केवल तीन उपन्यास ही आये थे। 'महासमर' के अन्य भाग (4 से 8) बाद में प्रकाशित हुए हैं। इसी ग्रन्थ के अन्त में 'आलोचक की कलम से 'शीर्षक के अन्तर्गत डॉ. सिंह ने जिन दो उपन्यासों की चर्चा की है – 'समुद्रसंगम' और 'सूतो वा सूतपूत्रो वा' – उससे भी उनकी ऐतिहासिक – पौराणिक उपन्यास-विषयक समझ स्पष्ट हो जाती है। इसमें प्रथम को उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास और दूसरे को पौराणिक उपन्यास माना है। क्योंकि प्रथम का कथानक मुगलकालीन ऐतिहासिक पर आधारित है तो दूसरे का कथानक महाभारतकालीन कर्ण के जीवन पर आधारित है।[63]

इस प्रकार डॉ. त्रिभुवन सिंह ने भले ही पौराणिक उपन्यास की कोई परिभाषा न दी हो, 'पौराणिक धरातल' के अंतर्गत उन्होंने जिन उपन्यासों की चर्चा की है उससे उनकी पौराणिक उपन्यास विषयक उद्भभावना स्पष्ट हो जाती है।

डॉ. पारूकान्त देसाई ने अपने शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास' में साठोत्तरी उपन्यासों के अतंर्गत पौराणिक उपन्यासों को लिया नहीं है। परन्तु 'अन्य उपन्यास' शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने डॉ. कोहली के 'दीक्षा' और 'अवसर' का उल्लेख किया है।[64]

डॉ. देसाई का उपर्युक्त कार्य सन् 1978 में संपन्न हुआ था, अतः उसमें केवल वहां तक की औपन्यासिक कृतियों को लिया गया है। किन्तु उनकी एक अन्य पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास' में प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक प्रवृत्तियों के अंतर्गत अलग से 'पौराणिक उपन्यास' संज्ञा का प्रयोग हुआ है।[65]

डॉ. हितेन्द्र यादव, डॉ. कविता सुरभि एवं डॉ. सुनीता सक्सेना ने अपनी समीक्षात्मक पुस्तक 'पौराणिक उपन्यास : समीक्षात्मक अध्ययन' में डॉ. नरेन्द्र कोहली के तीन उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। ये तीन उपन्यास हैं –

'अभिज्ञान', 'तोड़ो कारा तोड़ो' एवं 'प्रच्छन्न'। इनमें प्रथम उपन्यास में कृष्ण-सुदामा की कथा को लिया गया है, 'तोड़ो कारा तोड़ो' में प्रकटतः तो स्वामी विवेकानंद का जीवनवृत्त प्रस्तुत है किन्तु उसमें वेद, उपनिषद तथा अनेकानेक पुराणों के संदर्भ मिलते हैं; और 'प्रच्छन्न' में महाभारत पर आधारित कथावस्तु को लिया है। डॉ. नरेन्द्र कोहली की महाभारत उपन्यासमाला में, 'महासमर भाग-6' को ही 'प्रच्छन्न' नाम भी दिया गया है। 'प्रच्छन्न' की कथा महाभारत के वनपर्व और विराट पर्व की मुख्य घटनाओं पर आधारित है। इस प्रकार उपर्युक्त पुस्तक में संकलित तीनों उपन्यास पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। पुस्तक का शीर्षक ही यह द्योतित करता है कि उसके लेखक 'पौराणिक उपन्यास' की विभावना को अंगीकृत कर चुके हैं और वे ऐतिहासिक उपन्यासों से उन्हें अलगा भी रहे हैं।

स्वयं डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपने रामायण और महाभारत पर आधारित उपन्यासों को 'पौराणिक' उपन्यासों की संज्ञा दी है।[66] 'नरेन्द्र कोहली ने कहा' पुस्तक में डॉ. कोहली अनेक स्थानों पर 'पौराणिक उपन्यास' विषयक अपनी विभावना को स्पष्ट करते हैं।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी अपने औपन्यासिक आलोचना ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास' में 'ऐतिहासिक-पौराणिक' शब्द का प्रयोग करते हैं।[67] प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्होंने डॉ. नरेन्द्र कोहली, मनु शर्मा, शिवप्रसाद सिंह, बच्चनसिंह आदि के पौराणिक उपन्यासों की चर्चा की है; जिनमें नरेन्द्र कोहली के रामायण और महाभारत पर आधारित उपन्यास के अतिरिक्त 'वैश्वानर' (डॉ. शिवप्रसाद सिंह); 'सूतो वा सूतपुत्रो वा', 'पांचाली' (डॉ. बच्चनसिंह); 'द्रौपदी की अत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'गांधारी की आत्मकथा' (मनु शर्मा) आदि उपन्यासों का उल्लेख उन्होंने पौराणिक उपन्यासों के संदर्भ में किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि औपन्यासिक आलोचना के संदर्भ में पौराणिक उपन्यास जैसी प्रवृत्ति या औपन्यासिक प्रकार की विभावना अब अधिकांश विद्वानों द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। अधिकांश विद्वान ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यासों के अंतर को भी स्पष्ट कर

चुके हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रामायण, महाभारत, पुराण, वेद, उपनिषद आदि के कथानकों पर जिन उपन्यासों को लिखा जायेगा उनकी गणना 'पौराणिक उपन्यास' के अंतर्गत होगी।

प्रमुख पौराणिक उपन्यास :

यहां हमारा उपक्रम उन पौराणिक उपन्यासों का उल्लेख-भर करना है जिनकी चर्चा परवर्ती अध्यायों में की जायेगी। ऐसे पौराणिक उपन्यासों में 'वयं रक्षामः' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री); 'अनामदास का पोथा' (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी); 'एकदा नैमिषारण्ये' (अमृतलाल नागर); 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', 'युद्ध' (डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण पर आधारित पौराणिक उपन्यास); 'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष', 'निर्बन्ध' (डॉ. नरेन्द्र कोहली के महाभारत पर आधारित पौराणिक उपन्यास); 'अभिज्ञान' (डॉ. नरेन्द्र कोहली का कृष्ण-सुदामा के वृतान्त पर आधारित उपन्यास); 'संभवामि' (सन्हैयालाल ओझा); 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'द्रौण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'कृष्ण की आत्मकथा', 'गांधारी की आत्मकथा' (मनुशर्मा); 'वैश्वानर' (डॉ. शिवप्रसाद सिंह); 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' (डॉ. बच्चनसिंह); तथा 'पथ प्रज्ञा' (सुश्री वीणा सिन्हा) आदि की परिगणना कर सकते हैं। परवर्ती अध्यायों में इन्हीं उपन्यासों के विश्लेषण के आलोक में हम अपनी चर्चा का दौर आगे बढ़ायेंगे और उनमें पौराणिक उपन्यासों के कतिपय महत्वपूर्ण आयामों की चर्चा करेंगे।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं –

(1) पौराणिक उपन्यास की विभावना को स्पष्ट करने के लिए इतिहास और पुराण के अंतर को समझना अत्यन्त आवश्यक है। अधिकांश विद्वान पुराण को भी इतिहास में शामिल करते हैं, जो उपयुक्त नहीं है।

(2) इतिहास के प्रमुख अभिलक्षण इस प्रकार हैं : (क) इतिहास तथ्यमूलक है। (ख) इतिहास तिथिमूलक है। (ग) इतिहास शास्त्र है और वह विज्ञान के अधिक निकट है। (घ) पुराण भी शास्त्र है, किन्तु वह काव्य के अधिक निकट है। (च) इतिहास विज्ञान के अधिक निकट होने के कारण उसमें तार्किकता, वैज्ञानिकता, संगति, निश्चितता (Accuracy) आदि का विशेष महत्व होता है।

(3) पुराण के अभिलक्षण इस प्रकार हैं – (क) प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में पौराणिक कथाएं उपलब्ध होती हैं। (ख) पुराण कथाओं में प्रायः कथानक-अन्विति का अभाव होता है। (ग) तर्क की कसौटी पर पुराणकथाएं अवास्तविक लगती हैं। (घ) उनमें अतिशयोक्तियों, रूपकों और मिथकों की भरमार होती है। (च) पुराणों में देशकाल की विभावना पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। (छ) उनमें काल-क्रमिकता (Chronological order) का अभाव होता है। पुराणों में वर्णित अनेक पात्र हमें पुराण निर्देशित विभिन्न कालों में भी मिलते हैं जिसे तर्कयुक्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके त्रता-द्वापर आदि युग भी हजारों सालों के हैं। (ज) पुराण कथाओं में वर्णित कथाएं कपोलकल्पित, अवास्तविक और असंभव-सी प्रतीत होती हैं। उनमें यथार्थ (Reality) के स्थान पर काल्पनिकता (Fantasy) की भरमार होती है।

(4) इतिहास और पुराण में मुख्यतः निम्नलिखित अंतर पाया जाता है – (क) इतिहास और पुराण दोनों की गणना शास्त्र (Literature of knowledge) के अंतर्गत होती है, किन्तु दृष्टिभेद के कारण इतिहास विज्ञान के अधिक निकट है जबकि पुराण काव्य के। (ख) इतिहास और पुराण दोनों अतीतोन्मुखी हैं किन्तु पुराण का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से है, जबकि इतिहास में आधुनिककाल भी हो सकता है। (ग) इतिहास में तिथिक्रम होता है और वह निश्चित होता है, जबकि पुराणों में तिथिक्रम जैसा कुछ नहीं होता। (घ) इतिहास की देशकाल विषयक विभावना स्पष्ट होती है, पुराण की नहीं। (च) इतिहास की काल-गणना विज्ञान-सम्मत है, जबकि पुराणों की काल-गणना अतिशयोक्तिपूर्ण होती है। (छ) इतिहास के

महानायक "Larger than life" होते हैं; जबकि पुराणों के महानायक "Larger than imagination" होते हैं। (ज) इतिहास में नायक के कार्य पौरुषेय होते हैं, जबकि पुराणों में नायक के कार्य प्रायः अपौरुषेय होते हैं। (झ) इतिहास पूर्णतया बुद्धि, तर्क एवं तथ्यों पर आधारित होता है; जबकि पुराण श्रद्धा या विश्वास पर आधृत होते हैं और वे तर्कातीत भी होते हैं।

(5) पुराणों के मिथक रूपकात्मक होते हैं। उनका आधुनिक अर्थघटन कई बार उपयोगी सिद्ध होता है। कला और साहित्य में इन मिथकों की उपादेयता को कोई नकार नहीं सकता।

(6) संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्र के निर्माण में पुराणों की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

(7) हमारा इतिहास अधिक से अधिक तीन-चार हजार साल तक पीछे जा सकता है। अतः उस कालखण्ड पर आधारित उपन्यासों को ऐतिहासिक और उससे पहले के समय पर आधारित उपन्यासों को पौराणिक उपन्यास कहा जा सकता है।

(8) पौराणिक उपन्यास की विभावना अब स्पष्ट हो चुकी है और डॉ. त्रिभुवनसिंह, डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, डॉ. पारूकान्त देसाई, तथा डॉ. हितेन्द्र यादव प्रभृति हिन्दी उपन्यासों के आलोचकों ने पौराणिक उपन्यासों की सत्ता को मान्यत्ता दे दी है।

(9) पौराणिक उपन्यास पुराण-कथाओं पर आधारित होते हुए भी प्रत्येक स्थिति में उनको उपन्यास की यथार्थधर्मिता की शर्त पर खरा उतरना होगा और इस क्रम में पौराणिक मिथकों की व्याख्या आधुनिक संदर्भ में करनी होगी। इस प्रकार पौराणिक उपन्यास पौराणिक होते हुए भी वर्तमान समय में अपनी प्रासंगिकता को बरकरार रखते हैं। वर्तमान समस्याओं और सरोकारों से पौराणिक उपन्यास किन्नी नहीं काट सकता।

(10) पौराणिक उपन्यासों में मूल कथा में अधिक परिवर्तन किए बिना यथासंभव आधुनिकता और आधुनिक चिंतन लाने का प्रयास रहता है।

(11) प्रमुख पौराणिक उपन्यासों में 'वयं रक्षामः', 'अपने अपनेराम', 'अनामदास का पोथा', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', 'युद्ध', 'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष', 'निर्बन्ध', 'अभिज्ञान', 'संभवामि', 'सूतो वा सूतपुत्रो वा', 'पथप्रज्ञा' आदि की गणना कर सकते हैं।

संदर्भानुक्रम :

1. द्रष्टव्य : 'हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा' तथा हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन।
2. सी: टाईम्स आफ इण्डीया : 17-10-10 : पृ. 18 ।
3. द कनसाइज़ आक्सफर्ड रेफरन्स डिक्शनरी : पी. 567 ।
4. कोम्पेक्ट आक्सफर्ड रेफरेन्स डिक्शनरी : पी. 395 ।
5. उद्धृत द्वारा : डॉ. गुलाबराम : काव्य के रूप : पृ. 154 ।
6. सी: द ओरिएण्ट बुक आफ कोटेशंस : मीरा मल्होत्रा : पी. 95 ।
7. इबिड : पी. रिसपेक्टीवली : पृ. 95 ।
8. इबिड : पी. रिसपेक्टीवली : पृ. 95 ।
9. इबिड : पी. रिसपेक्टीवली : पृ. 95 ।
10. संस्कृति के चार अध्याय : डॉ. रामधारी सिंह दिनकर : भूमिका – पं. जवाहरलाल नेहरू : पृ. 12 ।
11. भारत का प्राचीन इतिहास : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार : पृ. 7 ।
12. हंस – अक्तूबर – 2005 : पृ. 37-38 ।
13. संस्कृत-हिन्दी कोश : डॉ. वामन शिवराम आप्टे : पृ. 623-624 ।
14. नालंदा विशाल शब्दसागर : पृ. 857 ।
15. बृहद गुजराती कोश : द्वितीय खण्ड : सं – महामहोपाध्याय के. का. शास्त्री : पृ. 1451 ।
16. बृहद शिक्षार्थी हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश : डॉ. हरदेव बाहरी : पृ. 1086 ।
17. वही ।
18. द कनसाइज़ आक्सफर्ड डिक्शनरी आफ करण्ट इंग्लिश : एडिटेड बाय - एच. डबल्यू. फाउलियर एण्ड एफ. जी. फोउलियर : पी. 782 ।
19. इबिड : पी. 782 ।
20. वही ।

21. द कोम्पेक्ट आक्सफर्ड रेफरन्स डिक्शनरी : पी. 557 ।
22. वही ।
23. भारतीय साहित्यकोश : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. 725 ।
24. वही : पृ. 725 – 726 ।
25. हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप-विकास : डॉ. शम्भूनाथ सिंह : पृ. 150 ।
26. द्रष्टव्य : भारतीय साहित्यकोश : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. 725 ।
27. भारतीय मिथक कोश : डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति - भूमिका : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक : पृ. 11 – 12 ।
28. वही : पृ. 13 ।
29. वही : पृ. 76 ।
30. द्रष्टव्य : गुजरात समाचार (गुजराती दैनिक) : लेख - डॉ. विहारी छाया : 'ब्रह्मांडनी पौराणिक कथाओ' दिनांक : 29-08-2007 : पृ. 12 ।
31. वही : 12 ।
32. वही : 11 ।
33. डॉ. पारूकान्त देसाई का चाँद विषयक दोहा।
34. द्रष्टव्य : समीक्षायन : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 19 ।
35. द्रष्टव्य : गुजराती गजलनी सौन्दर्य-मीमांसा : डॉ. रशीद मीर : पृ. 2 ।
36. द्रष्टव्य : युद्ध : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय भाग – 2 : पृ. 330 – 331 ।
37. 'द महाभारता : ए मोडर्न रेण्डरिंग वोल्यूम – 1' : डॉ. रमेश मेनन : पृ. 11 ।
38. भारत का प्राचीन इतिहास : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार : पृ. 122 ।
39. द्रष्टव्य : वाल्मीकि रामायण : 7/ 104 / 12-131 ।
40. द्रष्टव्य : लेख – गुजरात समाचार : 15-9-2007 ।
41. सी : आर्टीकल : 'राम एण्ड द मेज़िक आफ मायथोलोजी' : द टाईम्स आफ इण्डिया : 15-9-2007 : पी. रीसपेक्टिवली – 1 ।

42. वही : 1 ।
43. वही : 9 ।
44. वही : 9 ।
45. सी : आर्टिकल : लेट अस मूव ओन : मेघनाद देसाई : द टाईम्स आफ इण्डिया : 15-9-2007 : पी. 12 ।
46. द्रष्टव्य : गुजरात समाचार : राजेश ठक्कर : 5-10-2007 : पृ. 11 ।
47. द्रष्टव्य : डॉ. रामदरश मिश्र तथा डॉ. एस. एन. गणेशन : ग्रन्थ – क्रमश : 'हिन्दी उपन्यास – एक अंतर्यात्रा' तथा 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन'।
48. द्रष्टव्य : ग्रन्थ – क्रमशः 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', 'नरेन्द्र कोहली ने कहा', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', तथा 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास'।
49. द्रष्टव्य : संघर्ष की और : डॉ. कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 404 ।
50. हिन्दी साहित्यकोश भाग – 2 : सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : पृ. 156 ।
51. वही : पृ. 161 ।
52. वही : पृ. 162 ।
53. प्रथम पुरुष : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 6 ।
54. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सं. – भीष्म साहनी, रामजी मिश्र और भगवती प्रसाद निदारिया : 'दीक्षा की सृजन-यात्रा' डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 529 – 530 ।
55. हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डॉ. गोपालराय : पृ. 348 ।
56. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सं. – उपरिवत् : लेख – 'जनवादी राम और रामकथा के नये आयाम' : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक : पृ. 531 – 532 ।
57. द्रष्टव्य : नरेन्द्र कोहली ने कहा : सं. ईशान महेश : पृ. 37 – 38 ।
58. वही : पृ. 59 – 60 ।
59. वही : पृ. 59 ।

60. द्रष्टव्य : दीक्षा : डॉ. कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 149 ।
61. प्रकर : अक्तूबर – 1984 : पृ. 20 – 21 ।
62. द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डॉ. त्रिभुवनसिंह : पृ. 271 – 354 ।
63. द्रष्टव्य : वही : पृ. 735 – 736 ।
64. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ. पारुकान्त देसाई : पृ. 274 ।
65. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारुकान्त देसाई : पृ. 62 ।
66. द्रष्टव्य : नरेन्द्र कोहली ने कहा : सं. ईशान महेश : बातचीत-1 से लेकर बातचीत-4 : पृ. 55 – 90 ।
67. हिन्दी उपन्यास : डॉ. रामचन्द्र तिवारी : पृ. 94 ।

* * *